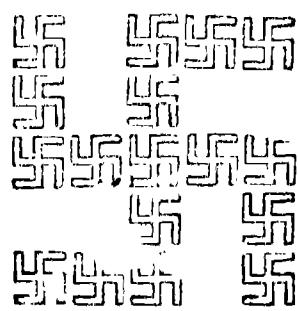


ॐ

भाग्य और पुरुषार्थ

वा

तकङ्कीर और तदन्नीर



लेखक →

सूरज के लिल

बौर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम संख्या

कानून नं.

वर्ष

भाग्य और पुरुषार्थ

(तक़दीर और तदबीर)

भाग्य, दैव, किस्मत या तक़दीर क्या है और पुरुषार्थ, उद्यम, तदबीर वा कोशिश क्या है ? भाग्य से ही सब कुछ होता है वा जीव की अपनी कोशिश भी कुछ काम कर सकती है ? और अगर दोनों ही शक्तियों के मेल से कार्य होता है तो इनमें कौन बलवान है और कौन निर्बल ? भाग्य की शक्ति कितनी है और पुरुषार्थ की कितनी ? भाग्य का काम क्या है और पुरुषार्थ का क्या ? इन सब बातों को जानना मनुष्य के लिये बहुत ही ज़रूरी है। अतः इस लेख में इन ही सब बातों को स्पष्ट करने की कोशिश की जायगी।

एकमात्र भाग्य से ही वा एक मात्र पुरुषार्थ से ही कार्य की सिद्धि मानने को दूषित ठहराते हुये श्री नेमिचन्द्रा चार्य गोमटसार कर्मकांड गाथा ८४४ में लिखते हैं कि, यथार्थ ज्ञानी भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के संयोग से कार्य की सिद्धि मानते हैं। एक पहिये से जिस प्रकार गाड़ी नहीं चल सकती, उसी प्रकार भाग्य वा पुरुषार्थ में से किसी एक से ही कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। बन में आग लग जाने पर जैसे अंधा पुरुष दौड़ने भागने की शक्ति रखता हुआ भी बन से बाहर नहीं हो सकता।

वैसे ही एक लंगड़ा पुरुष देखने की शक्ति रखता हुआ भी बाहर नहीं निकल सकता । हाँ, अगर अन्धा लंगड़े को अपने कन्धे पर चढ़ा ले, लंगड़ा रास्ता बताता रहे और अन्धा चलता रहे तो दोनों ही बन से बाहर हो जावेंगे । इसी प्रकार भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही के सहारे संसारी जीवों के कार्य की सिद्धि होती है किसी एक से नहीं ।

भाग्य और पुरुषार्थ क्या है, इसको श्री विद्यानन्द स्वामी ने अष्टसहस्री में (श्लोक नं० ८८ की टीका में) इस प्रकार स्पष्ट किया है—“पहले बांधे हुए कर्मों का ही नाम दैव (भाग्य या किस्मत) है, जिसको योग्यता भी कहते हैं, और वर्तमान में जीव जो तदवीर, कोशिश या चेष्टा करता है वह पुरुषार्थ है ।” भावार्थ, जो पुरुषार्थ किया जा चुका है और जिसका फल जीव भोग रहा है वा भोगेगा वह तो भाग्य कहलाता है और जो उद्यम अब किया जा रहा है वह पुरुषार्थ कहलाता है । वास्तव में दोनों ही पुरुषार्थ हैं । एक पहला पुरुषार्थ है और दूसरा हाल का पुरुषार्थ ।

जीव का असली स्वरूप सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति-मान और परमानन्द है, परतन्त्रता, इन्द्रियों की आधीनता राग, द्वेष, मोह—आदि उसका असली स्वभाव नहीं है । परन्तु अनादि काल से यह जीव कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ, अपनी ज्ञानादि शक्तियों को बहुत कुछ खोकर राग, द्वेष और मोह के जाल में फँसा हुआ, शरीर रूपी कूदख़ाने में बन्द पड़ा हुआ, तरह तरह के दुख भोग रहा है, किन्तु इस प्रकार कर्मों के जाल में फँसा रहकर भी जीव का निज स्वभाव सर्वथा नष्ट नहीं होगया है और न सर्वथा

नष्ट हो ही सकता है । * इस कारण कर्मों के जाल में पूरी तरह फंसे हुए जीवों की भी ज्ञान आदि शक्तियाँ कुछ न कुछ काम ज़रूर करती ही रहती हैं, जिनके कारण ही वे अजीव पदार्थों से अलग पहचाने जाते हैं और जीव कहलाते हैं इन ही बच्ची हुई शक्तियों के द्वारा जीव पुरुषार्थ करके कर्मों के बंधनों को कम और कमज़ोर कर सकता है और होते होते सब ही बंधनों को तोड़कर अपना असली ज्ञानानन्द स्वरूप प्राप्त कर सकता है ।

सब ही जीव अनादि काल से मिथ्यात्व में फंसे हुए संसार में भ्रमण करते फिर रहे हैं । इन ही में से जो हिम्मत करते हैं वे अपनी विचार शक्ति से काम लेकर मिथ्यात्व को छोड़ सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं और फिर और भी ज्यादा हिम्मत कर राग द्वेष से मुँह मोड़, गृह त्याग, मुनि हो जाते हैं और महाब्रतों को पालन कर, तप आदि के द्वारा धातिया कर्मों को दूय कर केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और फिर अधातिया कर्मों को भी नाशकर सदा के लिये मोक्ष में जा विराजते हैं । इस प्रकार जिन्होंने पुरुषार्थ कर कर्म शत्रुओं को जीत परम पद प्राप्त कर लिया है वे धन्य हैं और जिन्होंने पुरुषार्थ नहीं किया है वे धास फूंस और लकड़ी पत्थर आदि निर्जीव पदार्थों की तरह कर्मों के बहाव में बहते हुए संसार में रुलते हुए तरह तरह की ठोकरें खाते फिर रहे हैं और बराबर रुलते फिरते रहेंगे जबतक कि हिम्मत करके कर्मों का मुकाबला नहीं करेंगे और उनको दबाने और दूय करने की कोशिश नहीं करेंगे ।

* देखो गोमद्दसार गाथा २९ की संस्कृत टीका और टोडरमल जी का हिन्दी अनुवाद ।

कर्मों का असर दूर करने की तीन हालतें होती हैं
एक क्षय अर्थात् कर्म का बिलकुल ही नाश कर देना,
दूसरे उपशम अर्थात् कुछ समय के वास्ते असर करने से
तोक देना, तीसरे क्योपशम अर्थात् कर्म के उस बड़े हिस्से
को जो जीव के स्वभाव के सर्वथा घात करता हो, बिना फल
दिये ही नाश कर देना, इलका असर करने वाले हिस्से
का फल देते रहना और वाकी हिस्से का आगामी को फल
देने के वास्ते सत्ता में रहना । । यह ऐसा ही है जैसा
कि शरीर में कोई दुखदार्ड मवाद इकट्ठा हो जाने पर या
कोई दुखदार्ड वस्तु खा लेने पर, उसको वमन (कै) वा दस्तों
के द्वार बिलकुल ही निकाल बाहर कर शरीर को शुद्ध
कर देना तो क्षय है । कै, दस्त वा पसीना आदि के द्वारा
दुखदार्ड मवाद को न निकाल कर अर्थात् बीमारी के कारणों
को दूर न कर उस बीमारी की तुरन्त की पीड़ा को कुछ
समय के वास्ते किसी औषधि के द्वारा दबा देना उपशम
है । और किसी औषधि के द्वारा अधिक दुख देने वाले
मवाद का तो निकल जाना परन्तु कुछ इल्के से मवाद
का बाकी रह जाना जिससे कुछ इलका सा दुख होता रहे
और कुछ मवाद का आगे को असर करने के वास्ते दबा
रहना क्योपशम है । इस प्रकार कमती बढ़तो अनेक तरीके
से कर्मों का मुक्राबिला किया जा सकता है । जो पुरुषार्थी
हैं वे इन सब ही रीतियों से कर्मों सं लड़ाई करते हैं और
इनको दबा दबा कर आत्मोन्नति करते चले जाते हैं ।

कर्मों का एक एक हिस्सा नित्य ही फल देकर बेअसर
होता रहता है परन्तु मुनि महाराज तप आदि महान्

[†] देखो गोमद्वार जीव कांड गाथा १३ की संस्कृत टीका और
पं० टोडरमल जी कृत हिन्दी अनुवाद ।

पुरुषार्थों के द्वारा फल देने से पहले हो कर्मों का नाश कर देते हैं * आत्मध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपों ईंधन को भस्म करके धूर्ये वा गड़े की तरह उड़ा देते हैं। राग द्वेष रूपी चिकनाई से ही कर्म परमाणुओं का बंध आत्मा से होता है। मुनि महाराज अपने तप और ध्यान आदि पुरुषार्थ से राग द्वेष का नाश कर देते हैं जिससे कर्म बंधन की चिकनाई दूर होकर बंधे कर्म अलग होकर आप से आप ही उड़ जाते हैं।

कर्मों के उदय से सुख वा दुख जो भी हो उसमें सुख वा दुख मानने से, राग द्वेष करने से, आगामी को फिर कर्म बंध होता है, इस प्रकार कर्मों का उदय होना और बंधना बराबर होता ही रहता है। मुनि महाराज कर्मों के उदय होने पर उसमें कुछ भी सुख दुख नहीं मानते हैं, किसी भी प्रकार का कोई राग द्वेष नहीं करते हैं, सब हो अवस्था में समभाव रखते हैं, इस कारण उनको आगामी कर्मों का बंध नहीं होता। इस ही प्रकार भारी से भारी परीषहों के आने पर भी, कठिन से कठिन आपत्ति के आजाने पर भी वे किसी प्रकार का दुख नहीं मानते हैं, सर्व प्रकार से समभाव ही रखते हैं, इस ही से कर्मों के आने को रोकते हैं।

किसी बाह्य प्रबल कारण के मिलने पर कर्म समय से पहले भी उदय में आ जाते में जिसको उदीरणा कहते हैं। बुरे वा भले पहले बांधे हुये कर्मों का ज़ोर वा रस और फल देते रहने का समय भी पीछे के बंधे हुवे भले बुरे कर्मों के द्वारा घट बढ़ सकता

* देखो भगवतो आराधनासार गाथा १८५० की संस्कृत टीका अपराजित सूरक्षित, तथा लब्धिसार की टीका टोडरमल जी कृत में गाथा ३९२ के नीचे का प्रश्नोत्तर।

है, यहाँ तक कि सुख देने वाला सातावेदनीय कर्म बदलकर दुख देने वाला असाता रूप हो जाय, और दुख देने वाला असाता कर्म बदलकर सुख देने वाला साता रूप हो जाय अर्थात् पुन्य कर्म बदलकर पाप रूप हो जाय और पापकर्म बदलकर पुन्य रूप हो जाय। यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है जिससे सब ही कुछ हो सकता है। कर्मों के इस प्रकार अदलने बदलने को संक्षण कहते हैं। †

पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों का पैदा होना और बंधना भी बंद हो जाता है जिसको संबर कहते हैं। कर्मों के आठ भेद हैं, जिनके भेद प्रभेद अर्थात् उत्तर प्रकृतियाँ १४= हैं। बिना किसी प्रकार का चारित्र धारण किये एक मात्र मिथ्यात्व के दूर होने से ही कर्मों की १६ प्रकृतियों का बंध होना बंद हो जाता है, फिर अनन्तानुबंधी कषाय दूर होकर सम्यक्ती हो जाने से अन्यभी २५ प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस प्रकार चौथे गुणस्थानी अब्रति सम्यग्दृष्टि को ४१ कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इतना भारी काम एक मामूली से पुरुषार्थ से ही होने लगता है, फिर अणुब्रती श्रावक होने पर अन्यभी १० कर्म प्रकृतियों का बंध होना रुक जाता है, इस ही प्रकार पुरुषार्थ कर ज्यों ज्यों आगे बढ़ा जाता है त्यों त्यों अन्य भी अनेक कर्मों का बंध होना रुकता जाता है और अन्त को राग द्वेष के सर्वथा नाश हो जाने पर सब ही कर्मों का बंध होना रुक जाता है, यह सब पुरुषार्थ की ही महिमा है।

पुरुषार्थ होन के सब ही कार्य भ्रष्ट होते हैं, और पुरुषार्थी के सब ही कार्य सिद्ध होते हैं। यह बात सब ही सांसारिक कार्यों में भी स्पष्ट दिखाई देती है। मनुष्य अपने

† देखो गोमद्वासार कर्म कांड गाथा ४३८, ४३९

पुरुषार्थ से खेती करके तरह तरह के अनाज, तरह तरह के फल पैदा करता है; एक वृक्ष की दूसरे वृक्ष के साथ क़लम लगा कर उनके फलों को अधिक स्वादिष्ट और रसभरे बनाता है; अनाज को पीस-पोकर और आग से पका कर सत्तर प्रकार के सुस्वादु भोजन बनाता है। मिट्टी से इंट बनाकर, फिर उनको आग में पकाकर आकाश सं बातें करने वाले बड़े बड़े ऊँचे महल चिनता है, हज़ारों प्रकार के सुन्दर-सुन्दर बख्ब बनाता है, लकड़ी, लोहा, तांबा, पीतल, सोना, चांदी आदि ढूँढ कर उनसे अनेक चमत्कारी वस्तुयाँ बड़े लेता है; कागज़ बनाकर पुस्तकें लिखता है और चिट्ठियाँ भेजता है; तार, रेल, मोटर, इंजिन, जहाज़, घड़ी, घंटा, फोन, सिनेमा आदिक अनेक प्रकार की अद्भुत कलें बनाता है और नित्य नई सं नई बनाता जाता है; यह सब उसके पुरुषार्थ की ही महिमा है। पश्च इस प्रकार का कोई भी पुरुषार्थ नहीं करते हैं, इस ही कारण उनको यह सब वस्तुयाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उनका भाग्य वा कर्म उनको ऐसी कोई वस्तु बनाकर नहीं देता है, धास-फूस जीव जन्तु आदि जो भी वस्तु स्वयं पैदा हुई मिलती है उनपर ही गुज़ारा करना पड़ता है, बरसात का सारा पानी, जेठ असाढ़ की सारी धूप, शीत काल का सारा पाला अपने नंगे शरीर पर ही भेलना पड़ता है, और भी अन्य अनेक प्रकार के असह्य दुख पुरुषार्थ हीन होने के कारण सहने पड़ते हैं !

इसके उत्तर में शायद हमारे कुछ भाई यह कहने लगें कि मनुष्यों को उनके कर्मों ने ही तो ऐसा ज्ञान और ऐसा पुरुषार्थ करने का बल दिया है जिससे वे ऐसी ऐसी अद्भुत वस्तुयाँ बना लेते हैं, पशुओं को उनके कर्मों ने ऐसा ज्ञान और पुरुषार्थ नहीं दिया है, इस कारण वे नहीं बना सकते हैं। मनुष्यों को उनके कर्म यदि ऐसा ज्ञान और

उद्यम करने की शक्ति न देते तो वे भी कुछ न कर सकते, यह सब भाग्य वा कर्मों की ही ता महिमा है जिससे मनुष्य ऐसे अद्भुत कार्य कर रहे हैं। परन्तु प्यारे भाइयो ! क्या आपके ख्याल में तोथंकर भगवान को जो केवलज्ञान प्राप्त होता है, जिससे तीनों लोक के सब ही पदार्थ उनको बिना इन्द्रियों के सहारे के साक्षात् नज़र आने लग जाते हैं तो क्या केवल ज्ञान की यह महान् शक्ति भी कर्मों की ही दी हुई होती है ? नहीं ऐसा नहीं है। यह सब शक्ति तो उनको उनके पुरुषार्थ के ढारा कर्मों के नाश करने से ही प्राप्त होती है, कर्मों को दी हुई नहीं होती है। कर्म तो जीव को कुछ देते नहीं किन्तु बिगड़ते ही हैं। कर्मों का कार्य तो जीव को ज्ञान वा विचार शक्ति वा अन्य किसी प्रकार का बल देना नहीं है, किन्तु इसके विपरीत कर्मों का काम तो जीव के ज्ञान और बल वीर्य को नष्ट कर देने का ही है। ज्ञान और बल वीर्य तो जीव का निज स्वभाव है, जितना जितना भी किसी जीव का बलवीर्य नष्ट भ्रष्ट और कम हो रहा है वह सब उसके कर्म शत्रुओं का ही तो काम है, और जितना जितना जिस किसी जीव में ज्ञान और बल वीर्य है वह उसका अपना असली स्वभाव है, जिसको नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये कर्मों का काबू नहीं चल सका है। इस कारण मनुष्य अपने ज्ञान और विचार बल से जो यह लाखों करोड़ों प्रकार का सामान बनाता है वह सब अपनी निज शक्ति से ही बना रहा है, कर्मों की दी हुई शक्ति से नहीं। कर्मों का काबू चलता तो, वे तो उसकी यह शक्ति भी छीन लेते और कुछ भी न बनाने देते।

मनुष्यों की बनिसबत पशुओं पर कर्मों का अधिक काबू चलता है, इसी वास्ते उन बेचारों को यह कर्म उनकी ज़रूरतों का कुछ भी सामान नहीं बनाने देते हैं। कर्म तो

जीव के शत्रु हैं, इस कारण उनका काम तो एक मात्र विगड़ने का ही है—सँवारने का नहीं । भेद सिफ़्र इतना ही है कि जब कोई कर्म हमको अधिक काबू में करके अधिक दुख पहुँचाता है तो उसको हम पाप कर्म कहते हैं और जब कोई कर्म कमज़ोर होकर हम पर कम काबू पाता है जिससे हम अपने असली ज्ञान गुण और बल वीर्य से कुछ पुरुषार्थ करने के योग्य हो जाते हैं और कम दुख उठाते हैं, तो इसको हम पुराय कर्म कहने लग जाते हैं और खुश होते हैं ।

जिस प्रकार बीमारी मनुष्य को दुख ही देती है सुख नहीं दे सकती है, उसो प्रकार कर्म भी जीव को दुःख ही देते हैं सुख नहीं दे सकते हैं । बीमारी भी जब मनुष्य को अधिक दबा लेती है, उठने बैठने भी नहीं देती है, होशहवास भी खो देती है, खाना पीना भी बन्द कर देती है, नींद भी नहीं आती है, रात दिन असह्यपीड़ा ही होती रहती है, तब वह बीमारी बहुत बुरी और महानिंद्य कही जाती है; परन्तु जब योग्य औषधि करने से वह असह्य बीमारी कम होकर सिफ़्र थोड़ी-सी कमज़ोरी आदि रह जाती है, मनुष्य अपने कारोबार में लगने योग्य हो जाता है, तो खुशियां मनाई जाती हैं, परन्तु यह खुशी उसको बीमारी ने नहीं दी है, किन्तु बीमारी के कम होने से ही हुई है । इसी प्रकार कर्म भी जब जीव को अच्छी तरह जकड़ कर कुछ भी पुरुषार्थ करने के योग्य नहीं रहने देते हैं तो वे खोटे व पापकर्म कहलाते हैं और जब जीव अपने शुभ परिणामों के द्वारा कषायों को मंद करके कर्मों को कमज़ोर कर देता है जिससे वह पुरुषार्थ करने के योग्य होकर अपने सुख की सामग्री जुटाने लग जाता है तो वह उन हलके कर्मों को शुभ व पुराय कर्म कहने लग जाता है ।

कर्म बन्धन

कर्म क्या हैं, जीव के साथ कैसे उनका सम्बन्ध होता है और वे क्या कार्य करते हैं, इसका सारांश रूप कथन इस प्रकार है कि रागद्वेष के करने से आत्मा में एक प्रकार का ऐसा संस्कार पड़ जाता है जिससे फिर दोबारा रागद्वेष पैदा हो, उस दोबारा पैदा हुवे रागद्वेष से फिर रागद्वेष पैदा होता है, इस प्रकार एक चक्ररसा चलता रहता है। इसही को कर्म बन्धन होना कहते हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने के बास्ते कुम्हार चाक को डंडे से घुमाता है, परन्तु डंडा और कुम्हार दोनोंके अलग हो जाने पर भी कुछ देर तक चाक घूमता ही रहता है, डंडे के द्वारा घुमाने से चाक में घूमते रहने का संस्कार पड़ जाता है इस ही कारण घुमाना बन्द करने पर भी वह चाक कुछ देर तक घूमता ही रहता है, इस हो प्रकार डोरी लपेट कर जब लट्ठू घुमाया जाता है तो डोरी अलग होने पर भी बहुत देर तक वह लट्ठू आप से आप ही घूमता रहता है, इसी का नाम संस्कार हो जाना वा आदत पड़ जाना है। बार बार किसी बात को करते रहने से जो आदत पड़ जाती है, वह पक्की होकर छूटनी मुश्किल हो जाती है। भंग, चरस वा शराब आदि किसी नशे की आदत को तो छोड़ने का इरादा करने पर भी मुश्किल से ही छूटती है, नशे की बात तो दूर रही, जिन लोगों को खाने में तेज़ मिरच डालकर चटपटा खाना खाने की आदत हो जाती है वे उसके खाने से नुकसान होने पर भी उसका खाना नहीं छोड़ते हैं, यहां तक कि दुखती आंखों भी खाते हैं, जिससे और भी ज्यादा आंख खड़कती है, तड़पते हैं, चिलाते हैं और सिर पीटते हैं, जानते हैं कि मिरच खाने से ही यह तकलीफ़ बढ़ी है परन्तु फिर भी

खाते हैं और दुख उठाते हैं। यह ही हाल राग द्वेष आदि विषय कषायों का है जिनके करने से भी फिर २ बैसा ही करने का संस्कार पड़ता है और बार बार करते रहने से वह संस्कार ज्यादा २ मज़बूत होकर छूटना मुश्किल हो जाता है, यह ही कर्म बंधन है जिसके चक्र में सब ही संसारी जीव पड़े हुए हैं। इस ही से जीव अपनी असली चाल भूलकर, इन रागद्वेष रूपी संस्कारों के अनुसार बिल्कुल ही उलटी पुलटी चाल चल रहा है।

परन्तु किसी भी वस्तु में कोई विगाड़ बगैर किसी दूसरी वस्तु के मिलने के नहीं आ सकता है, यह पदार्थ-विद्या का अटल सिद्धान्त है। देह में भी रोग तब ही उत्पन्न होता है जब कोई पर पदार्थ (foreign matter, गैर मादा) आ घुसता है। घड़ी भी ठीक चलते २ तब ही ग़लत चाल चलने लगती है जबकि उसके पुज़ों में मैल आ जाता है पुज़ों को आसानी से चलते रहने के लिये उनको कुछ तेल आदि कोई चिकनाई लगानी पड़ती है, घड़ी की डिविया या वक्स के अन्दर धोड़ी बहुत हवा तो ज़रूर होती ही है, उस हवा में हल्का सा जो कुछ गर्दा मिला हुवा होता है, उसके बहुत ही वारीक कण पुज़ों की चिकनाई के कारण उन पर जम जाते हैं और उनकी चाल को विगाड़ देते हैं। इस ही प्रकार राग द्वेष के कारण आत्मा में भी किसी प्रकार का हलन चलन होने से देह के अन्दर के अति सूक्ष्म पुद्गल परमाणु जो आत्मा में घुल मिल सकते हैं, वह उसमें मिल जाते हैं, यह ही पर पदार्थ है जिसके कारण आत्मा में विगाड़ आता है। रागद्वेष ही इसमें चिकनाई का काम करते हैं। रागद्वेष रूपी चिकनाई के बिना कोई भी किसी प्रकार का मैल आत्मा को नहीं लग सकता है। मैल भी कहीं से खेंच कर लाना नहीं पड़ता है, जिस प्रकार घड़ी के अन्दर की हवा में मिला

हुवा गुर्दा ही पुज्जों को चिपट कर उसकी चाल को बिगड़ देता है, बिल्कुल इस ही तरह शरीर के अन्दर जो भी अति सूक्ष्म पुद्दल परमाणु मौजूद होते हैं वह ही राग द्वेष रूपी चिकनाई के कारण आत्मा से चिपटकर उसकी चाल को बिगड़ देते हैं; यह ही कर्म बंधन है जो दो प्रकार का कहा जाता है। आत्मा के अन्दर राग द्वेष का उत्पन्न होना तो भाव बंध कहलाता है और इस भाव बंध अर्थात् राग द्वेष के उत्पन्न होने के कारण उसकी चिकनाई से देह के अन्दर आत्मा के नज़दीक के जो अति सूक्ष्म पुद्दल परमाणु मैल के तौर पर आत्मा में लग जाते हैं वे द्रव्य बंध कहलाता है! इस प्रकार आत्मा में मैल के लग जाने अर्थात् बिगड़ के आ जाने से आत्मा की चाल में ख़राबी आकर फिर राग द्वेष पैदा होता है और उस राग द्वेष से फिर दोबारा सूक्ष्म पुद्दल परमाणुओं का मैल आत्मा में जम जाता है, जिससे फिर राग द्वेष उत्पन्न होता है, इस प्रकार एक चक्कर सा चलता रहता है, भावकर्म से द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्म से भाव कर्म पैदा होते रहते हैं, जिससे रहट की घड़ी की तरह यह चक्कर चला दी करता है।

ऊपर के इस कथन से यह बात साफ़ खुल जाती है कि कर्म कोई ख़ास वस्तु नहीं है जो कहीं से ढूँढ़ कर लाई जाती हो या आप ही कहीं से आती हो, किन्तु घड़ी के पुज्जों में चिपटने वाले उस मामूली गर्दे के समान जो घड़ी के अन्दर की हवा में मिला हुआ हो और घड़ी के पुज्जों से चिपटकर घड़ी की चाल को बिगड़ देता हो, आत्मा में भी राग द्वेष रूपी चिकनाई लग जाने से देह के अन्दर की हवा में मिले हुवे गर्दे के बहुत बारीक कण जो अति सूक्ष्म होने के कारण आत्मा में घुल मिल सकते हैं, वह ही

आस पास के मामूली परमाणु आत्मा सं चिपटकर उसकी चाल को बिगाड़ देते हैं और द्रव्य कर्म कहलाने लगते हैं ।

संस्कार कहो वा कर्म बंधन कहो, चाहे जो नाम रख्खो, बात असल यह ही है कि कषाय करने से फिर फिर कषाय पैदा होने के संस्कार पड़ते हैं । कषायों के उत्पन्न होते रहने से जीव की उन्मत्त की सी दशा हो जाती है, जिससे उसको अपने भले बुरे की कुछ भी तमीज़ नहीं रहती है, बुद्धि भ्रष्ट होकर अपने को कुछ से कुछ समझने लग जाता है; आप ही अपने हाथों अपना अहित करने को उतारु हो जाता है, विषय कषायों के बस होकर अपने को बेबस समझने लग जाता है, इस ही का नाम मोहनीय कर्म है जिसके दो भेद हैं एक दर्शन मोहनी और दूसरा चारित्र मोहनी; अपने को कुछ से कुछ समझ बैठना, बुराई को भलाई और अहित को हित मानने लगना यह ही दर्शन मोहनीय का काम है और यह ही मिथ्यात्व है ! कषायों का भड़कना, विषय कषाय में फंसना, रागद्वेष करना यह चारित्र मोहनीय का काम है ।

कषायों के भड़कने से आत्मा की जानने की शक्ति पर भी पर्दा पड़ जाता है, वह शक्ति दो प्रकार की है, एक दर्शन और दूसरा ज्ञान, संसारी जीव अपनी इन्द्रियों के द्वारा जब किसी वस्तु को जानने की तरफ अपना उपयोग लगाता है तो तुरन्त ही उसको उस वस्तु का ज्ञान नहीं होता है किन्तु सब से पहले उसको यह ही मालूम होता है कि कुछ है, इस ही को दर्शन कहते हैं, फिर जब वह यह जानने लगता है कि उसका कुछ आकार है या उसका कोई रंग है या किसी प्रकार की कोई गंध है या किसी प्रकार का कोई स्वाद है, इत्यादि जब किसी भी इन्द्रिय का कोई विषय उस वस्तु में मालूम होने लगता है, तब ही से वह जानना ज्ञान कहलाता है । दर्शन पर पर्दा पड़ना अर्थात् उसमें खुराबी

आना दर्शनावरण कहलाता है और ज्ञान में किसी प्रकार की ख़राबी आना ज्ञानावरण कहा जाता है। कषाय के कारण जीव की आत्म शक्तियों में, उसके बलवीर्य में भी रुकावट पड़ने लग जाती है, जिसको अन्तराय कहते हैं। इस प्रकार कषायों के उत्पन्न होने से दर्शनावरणीय, ज्ञानावरणीय, गोदनीय और अन्तराय यह चार कर्म आत्मा के असली स्वभाव को घात करते हैं, इस ही वास्ते अधातिया कहलाते हैं, कषायों के सर्वथा नाश होने पर, यह चारों ही कर्म नाश होकर अनन्तदर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति नाम का आत्म का असली स्वरूप प्रगट हो जाता है।

कषायों के कारण आत्मा में मैल लग जाने से उसकी कुछ ऐसी हालत भी हो जाती है जिससे उसके असली स्वभाव में तो फ़रक़ नहीं आता है किन्तु देह में क्रायम रहकर आयु पूर्ण होने तक संसार में ज़रूर विचरना पड़ता है। ऐसी हालत पैदा कराने वाले कर्म अधातिया अर्थात् जीव के स्वभाव को घात न करने वाले कहलाते हैं। यह अधातिया कर्म भी चार प्रकार के हैं, वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम। इन्द्रियों के विषय का अनुभव कराना वेदनीय कर्म का काम है, इसके दो भेद हैं, साता और असाता, साता से सुख का अनुभव होता है और असाता से दुख का, जैसा कि गोमद्द्वासार कर्मकांड गाथा १४ में लिखा है,

अक्वाणं अणुभवणं वेयणीयं सुहसर्वयं सादं

दुख सर्वमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥

श्र्वर्थ पं० टोडरमल जी कृत—‘इन्द्रियन के अपने विषयन का अनुभवन—जानना तो वेदनीय है, तहाँ सुख स्वरूप साता है, दुख स्वरूप असाता है तिन सुख दुखन को वेदयति कहिये अनुभव करावे सो वेदनीय कर्म है।

परन्तु यह वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म के उद्य के बल से अर्थात् रागद्वेष के होने पर ही सुख दुख का अनुभव करा सकता है; जैसा कि गोमटसार कर्मकांड गाथा १६ में लिखा है ।

घादिव वेयणीयं मोहस्स बलेण घाददे जीवं ।

इदि घादीणं मज्जे मोहस्सादिमि पठिदन्तु ॥

अर्थ पं० टोडरमल जी कृत—वेदनीय नामाकर्म सो वातिया कर्मवत् मोहनीय कर्म का भेद जो रति श्रवति तिनके उद्य काल कर ही जीव को घाते, सुख दुख स्वरूप साता असाता कों कारण इन्द्रियन का विषय तिनका अनुभव करवाय घात करे है ।

कुछ समय तक किसी एक शरीर में जीव को ठहराये रखना यह आयु कर्म का काम है, किसी प्रकार का शरीर प्राप्त कराना यह नाम कर्म का काम है । ऊँच-नीच भव वा ऊँच नीच गति प्राप्त कराना यह गोत्र कर्म का काम है ।

इस प्रकार इन आठ कर्मों के कार्य को जान लेने पर यह बात साफ़ हो जाती है, कि कर्मों का जो कुछ भी ज़ोर चलता है वह उस ही पर चलता है जिसके बे कर्म होते हैं । कर्म करने वाले जीव के सिवाय अन्य किसी भी जीव पर वा उसके शरीर के सिवाय अन्य किसी भी पुद्गल पदार्थ पर उनका कोई अधिकार नहीं होता है ।

निमित्त कारण

संसार में अनन्तानन्त जीव और हज़ारों लाखों ग्रह तारे नक्षत्र और आग पानी हवा मिट्टी आदि अनन्त पुद्गल पदार्थ भरे पड़े हैं, जो अपने अपने स्वभावानुसार अपना-अपना काम करते रहते हैं । उसी संसार में हम भी रहते हैं, हमारा और इन सब जीव और अजीव

पदार्थों का संयोग इसी तरह हो जाता है जिस तरह रात को बसेरे के लिये एक पेड़ पर आये हुए पक्षियों का वा एक सराय में इकट्ठे हुए मुसाफिरों का—

पक्षियों वा मुसाफिरों का यह सब संयोग एक पेड़ पर आ बैठने वा एक सराय में आकर ठहरने के कारण ही होता है, कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिचा हुआ आकर इकट्ठा नहीं होता है न कोई किसी दूसरे के कर्मों से खिच ही सकता है। इस ही अचानक दृश्य भर के संयोग में हम किसी से राग कर लेते हैं और किसी से द्वेष, फिर इसी रागद्वेष के कारण उनके अनेक प्रकार के परिवर्तनों, उनके सुख और दुःखों को अपना सुख और दुःख मान कर सुखी और दुःखी होने लग जाते हैं। इसी प्रकार जीव का अपने कुटम्बियों नगर-निवासियों और देशवासियों से संयोग और वियोग होता रहता है, ऐसा ही जीवों का यह संयोग संसार की अनेकानेक निर्जीव वस्तुओं से भी होता रहता है।

एक कामी पुरुष बहुत दिन पीछे रात को अपनी स्त्री से मिलता है और चाहता है कि रात लम्बा होजाय इसी कारण नगर का घन्टा बजने पर भुंभलाता है कि क्यों ऐसी जल्दी २ घन्टा बजाया जा रहा है; फिर दिन में जब अपनी प्यारी स्त्री से बिछोड़ा रहता है तो तड़फता है कि क्यों देर देर में घन्टा बज रहा है। इसी को किसी कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

कल शब्देवस्त्व * में क्या जल्द बजें थी घड़ियाँ ।

आज क्या मरगये घड़ियाल बजाने वाले ॥

इसी प्रकार कभी रात होती है कभी दिन, कभी चांदनी होती हैं कभी अंधेरी, मौसमें बदलती हैं, जाड़ा पड़ता है, गर्म होती है, पानी बरसता है, बादल होता है, धूप निकलती है, हवा कभी ठन्डी चलती है, कभी गर्म, नदियाँ बहती हैं, पानी का बहाव

* मिलाप की रात

आता है, अन्य भी अनेक प्रकार के अलटन-पलटन होते रहते हैं। संसार का यह सारा चक्र हमारे कर्मों के आधार नहीं चल रहा है, किन्तु घड़ियाल के घन्टों की तरह सब कार्य संसार की अनन्तानन्त वस्तुओं के अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही हो रहा है। परन्तु हम अपनी इच्छा के अनुसार कभी रात चाहते हैं कभी दिन, कभी जाड़ा चाहते हैं कभी गर्मी, कभी बादल चाहते हैं, कभी धूप, कभी वर्षा चाहते हैं कभी मूल्य। इसी प्रकार संसार के अन्य भी सभी कार्मों को अपनी इच्छा के अनुसार ही होते रहना चाहते हैं, परन्तु यह सारा संसार हमारे आधीन न होनेसे जब यह कार्य हमारे अनुसार नहीं होते हैं तो, हम दुःखी होते हैं और अपने भाग्य व कर्मों को ही दोष देने लग जाते हैं। किन्तु इसमें हमारे कर्मोंका क्या दोष? भूल तो हमारी है जो हम सारे संसार को, जो न हमारे आधीन है न हमारे कर्मों के ही आधीन, अपने ही अनुकूल चलाना चाहते हैं, नहीं चलता है तो दुःखी होते हैं।

रेलमें सफर करते समय इधर उधरसे आ-आकर अनेक मुसाफिर बैठते रहते हैं, कोई उतरना है कोई चढ़ता है, यो ही तातासा लगा रहता है—तरह तरह के पुरुषोंसे संयोग होता रहता है, किसीसे दुख मिलता है, किसीसे सुख। कोई बंसार है, हरदम खासता है थूकता है, छोंकता है, जिससे हमको दुख होता है। किसी के शरीर और कपड़ों में बू आरही है, जिससे हमारा नाक फटा जा रहा है; कोई सुगन्ध लगाये हुये हैं, जिसकी महक से जी खुश होता है; कोई सुन्दर गाना गाता है, कोई दूसरे मुसाफिरों से लड़ रहा है, इन सब ही के भले बुरे कृत्यों से कुछ न बुछ दुख सुख हमको भी भोगना ही पड़ता है। कारण इसका एकमात्र यह ही है कि रेल में सफर करने के कारण हमारा उनका संयोग हो गया है। हमारे कर्म हमको दुख सुख देने के बास्ते उनको उनके घरों से खैंचकर नहीं ले आये हैं, हमारी ही तरह वह सब भी अपनी २

ज़रूरतों के कारण ही यहां रेल में सफर करने को आये हैं। हमारे कर्मों का तो कुछ भी ज़ोर उन पर नहीं चल सकता है और न उनके कर्मों का कुछ ज़ोर हमारे ऊपर ही हो सकता है।

इस ही प्रकार नरक स्वर्ग आदि अनेक गतियों से आ आकर जोब एक कुटम्ब में, एक नगर में और एक देशमें इकट्ठे हो जाते हैं, वह भी सब अपने अपने कर्मानुसार ही आ-आ कर जन्म लेते हैं, हमारे कर्म उनको घैंच कर नहीं ला सकते हैं। रेलके भुसाफ़िरों की तरह एक स्थान में इकट्ठा होकर रहने के संयोग से उनके द्वारा भी हमारा अनेक प्रकार का बिगड़ संवार होता है जो हमें भेलना ही पड़ता है। दृष्टान्त रूप मान लीजिये कि एक हमारे पड़ौसी के यहां बेटे का विवाह है। जिसके कारण रात दिन गाजा बाजा, गाना नाचना, खाना खिलाना आदि अनेक उत्सव होते रहते हैं, उनके इस शोर-गुलसे रातको हमको नींद भर सोना नहीं मिलता है, जिससे हम दुखी होते हैं; तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमको यह थोड़ा सा दुख पहुँचाने के बास्ते पड़ौसी के यहां उसके बेटे का विवाह रचवा दिया है ?

ऐसा ही दूसरा दृष्टान्त यह हो सकता है कि पड़ौसीके यहां काँई जवान मौत हो गई है, जिससे उसकी जवान विधवा रात दिन विलाप करती है, उसके इस विलापसे हमारी नींदमें खलल पड़ रहा है, तो क्या हमारे कर्मों ने ही हमारी नींदमें खराबी डालनेके बास्ते जवान पड़ौसी को मार कर उसकी जवान स्त्रीको विधवा बनाया है ? नहीं, ऐसा मानना तो बिलकुल ही हँसी की बात होगी। असल बात तो यह ही माननी पड़ेगी कि व्याह वालेके यहां भी उसके अपने ही कर्मों से विवह प्रारम्भ हुआ और मरने वाले के यहां भी उसके अपने ही कर्मोंसे मौत हुई, परन्तु पड़ौसमें रहने के संयोग से वह हमारी नींद में खलल डालनेके निमित्त ज़रूर हो गये।

इसको और भी ज़्यादा स्पष्ट करनेके लिये दूसरा दृष्टान्त यह हो

सकता है कि कुछ वर्ष पहले यहां हिन्दुस्तान में लाखों मन चीनी जावा से आती थी और खूब मंहगी विक्री थी, जिससे हर साल करोड़ों रुपया हिन्दुस्तान का जावा चला जाता था, हिन्दुस्तान कंगाल और वह मालामाल होता जाता था, लेकिन अब कुछ सालसे हिन्दुस्तानियों ने यहां ही चीनी बनानी शुरू कर दी है, जिससे यहां चीनी भी सस्ती हो गई है और रुपया भी यहां का यहां ही रहने लग गया है, परन्तु जावावालोंकी चीनी की विक्री बन्द होनेसे उनके सब कारखाने पट होगये हैं, तो क्या जावावालोंके खोट कमोंने ही जावावालोंका हानि पहुँचानेके वास्ते हिन्दुस्तानवालोंसे चीनी बनानेके कारखाने खुलवा दिये हैं ? नहीं एसा नहीं माना जासकता है, यहां वालोंने जो कारखाने खोले हैं वह तो अपनेही कमोंसे वा अपने ही पुरुषार्थसे खोले हैं, जावावालोंके खोट कमोंसे वह क्यों खोलते, हां कारखाने खोलकर जावावालोंको नुकसान पहुँचानेके निमित्त कारण वह ज़रूर हो गये हैं ।

अकाल मृत्यु

निमित्त कारण जीवोंको कैसा नाच नचाता है और क्या-च-क्या कर डालता है, यह बात अकाल मृत्युके कथनसे बहुत अच्छी तरह समझ में आसकता है। कुंद कुद स्वामी ने भाष पाहुड़ की गाथा नं० २५, २६ में अकाल-मृत्यु का कथन इस प्रकार किया है—हे जीव ! मनुष्य और तिर्यक पर्यायमें तूने अनेक बार अकाल मृत्यु के ढारा महा दुख उठाया है, विष के खाने से वा विषैले जानवरोंके काटे जानेसे, किसी असहा दुखके आपड़नेसे, अधिक खून निकल जानेसे, किसी भारी भय-से, हतियार के घातसे, महा संकलेशरूप परिणामोंके होनेसे—अर्थात् अधिक शोक माननेसे वा अधिक कोध करनेसे—आहार न मिलनेसे, सांसके रुकनेसे, बरफम गलजानेसे, आगमें जलजानेसे, पानीमें डूबजानेसे, वृक्ष वा अन्य किसी

ऊँचे स्थानसे गिरपड़नेसे, शरीरमें चोट लगनेसे, अन्य भी अनेक कारणसे अकाल मृत्यु होती रहती है। इसी प्रकार गोमट्सार कर्मकांड की निन्न गाथा ५७ में भी विष, रक्त-क्षय, भय, शख्तघात, महावेदना, सांस रुकना, आहार न मिलना आदि कारणोंसे बंधा आयुका छीजना अर्थात् समय से पहले ही मरण होजाना लिखा है।

विसवेयणरत्तकवयन्नयसत्थगहणसंकिलेसेहि ।

उस्सासाहाराणं णिरांहदा छिज्जदे आऊ ॥५७॥

तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र ५३ का भाष्य करते हुए श्री अकलंक स्वामी ने राजवार्तिक में और विद्यानन्द स्वामी ने श्लोक वार्तिकमें मरणकाल से पहले मृत्यु का हो जाना सिद्ध किया है और लिखा है कि अकाल मृत्यु के रोकने के वास्ते आयुर्वेद में रसायन आदिक बर्तना लिखा है जिससे भी अकाल मृत्यु सिद्ध है। इस ही प्रकार अन्य शारीरिक रोगों के दूर करने के वास्ते भी औषधि आदिक वाह्य निमित्त कारणों का जुटाना ज़रूरी बताया है। भगवती आराधनासार गाथा ८२३ का अर्थ करते हुये पंडित सदासुख जा ने अकाल मृत्यु का वर्णन इस प्रकार किया है—

कितनेक लोग ऐसे कहे हैं, आयु का स्थिति-बंध किया सो नहीं छिड़े हैं, तिनकुं उत्तर कहे हैं—जो आयु नहीं ही छिदता तो विष भक्षण तैं कौन पराड़मुख होता अर उखाल (कै कराना) विष पर किस वास्ते देते, अर शख्त का घातते भय कौन वास्ते करते अर सर्प, हस्ती, सिंह, दुष्ट मनुष्यादिकन को दूरहीतैं कैसे परिहार करते; अर नदी समुन्द्र कूप वापिका तथा अग्नि की ज्वाला में पतन तैं कौन भयभीत होता। जो आयु पूर्ण हुआ बिना मरण ही नहीं तो रोगादिक का इलाज काहेकूं करते, तातैं यह निश्चय जानदूं—जो आयु

का घात का बाह्य निमित्त मिल जाय तत्काल आयु का घात होय ही जाय, इमें संशय नहीं है, वहुर आयु कर्म की नाई अन्य कर्म भी जो बाह्य निमित्त परिपूर्ण मिल जाय तो उदय हो ही जाय, नीम-भक्षण करेगा ताके तत्काल असाता देवनीय उदय आवें ही है, मिश्री इत्यादिक इष्ट वस्तु भक्षण करे ताके सातावेदनीय उदय आवे ही है तथा वस्त्रादिक आङे आ जायं तो चक्षु छारे मतिज्ञान रुक जाय, कर्ण में डाया देवें तो कर्ण डारे मतिज्ञान रुक जाय, ऐसे ही अन्य इन्द्रियन के छारे ज्ञान रुके ही है; नशा आदिक द्रव्यते श्रुत-ज्ञान रुक जाय है, भैस की दही लस्सन आदिक द्रव्य के भक्षण तै निद्रा की तीव्रता होय ही है, कषायण के कारण मिले कषायण की उदीर्णा होवे ही है, पुरुष का शरीरकू तथा स्त्री का शरीरकू स्पर्शनादिक कर वेद की उदीर्णातै काम की वेदना प्रज्वलित होय ही है, अरति कर्मकू इष्टवियोग, शोक कर्मकू सुपुत्रादिक का मरण इत्यादिक कर्म की उदय उदीर्णादिककू करे ही है। ताते ऐसा तात्पर्य जानना, इस जीव के अनादि का कर्म-संतान चला आये है, अर समय समय नवीन नवीन वन्ध होय है, समय समय पुरातन कर्म रत्न देय देय निर्जरे है, सो जैसा बाह्य, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, मिल जाय तैसा उदय में आ जाय, तथा उदीर्णा होय उत्कट रस देखे। अर जो कोऊ या कहे, कर्म करेगा सो होयगा, तो कर्म तो या जीव के सर्व ही पाप पुण्य सत्ता में मौजूद हैं, जैसा जैसा बाह्य निमित्त प्रबल मिलेगा, तैसा तैसा उदय आवेगा, और जो बाह्य निमित्त कर्म के उदय को कारण नाहीं, तो दीक्षा लेना, शिक्षा देना तपश्चरण करना सत्संगति करना, वाणिज्य व्यवहार करना, राज संवादि करना, खेती करना, औषधि संवन करना, इत्यादिक सर्व व्यवहार का लोप हो जाय, ताते ऐसी भावनाकू परमागमते निश्चय करना जो आयु कर्म का

परमाणु तो साठ वर्ष पर्यंत समय समय आवा जीव्य निषेकनि
में बांटाने प्राप्त भया होय अर बीच में बीस बरस की अवस्था
ही में जो विष शङ्खादिक का निवित्त मिल जाय तो चालीस
बरस पर्यंत जो कर्म का निषेक समय समय निर्जरता सो
अन्तर्महूर्त में उदीर्णा में प्राप्त होय इकट्ठा नाशने प्राप्त होय,
सो अकाल मरण है ।”

भावाथै इस कथन का यह है कि जिस प्रकार अंगीठी
में जलते हुए कोयले भर दिये जावें तो साधारण रीति सं
मन्द-मन्द तौर पर जलते हुए वे कोयले एक घंटे तक जलते
रहेंगे, कोयलों के थोड़े थोड़े कण हरदम जल जल कर राख
होते रहेंगे और एक घंटे में सब हो जलकर ख़त्म हो जायेंगे,
परन्तु अगर तेज़ हवा चलने लगे या कोई ज़ोर सं पंखा
भलने लगे, या फूंक मारने लगे या उन कोयलों पर मिट्टी का
तेल डाल दे, तो वे कोयले एकदम भड़क उठेंगे और दस
पाँच मिनट में ही जलकर राख हो जायेंगे । इस ही प्रकार
हरएक कर्म का भी बंधा हुआ समय होता है, उस बंधे हुए
समय तक वह कर्म साधारण रीति सं मन्द मन्द गति सं
अपना असर दिखाता हुआ हरदम कण कण नाश होता रहता
है, समय पूरा होने तक वह सब ख़त्म हो जाता है, इस
ही को कर्मों का उदय होना, भड़ जाना या निर्जरा होते
रहना कहते हैं । परन्तु अगर किसी ज़ोरदार निमित्त कारण
से कर्म का वह हिस्सा भी जो देर में उदय होता, जल्दी
उदय में आ जाय तो उसे उदीर्णा कहते हैं । दृष्टिंत रूप
से किसी की आयु साठ बरस की है लेकिन बीस बरस की
ही अवस्था में उसको सांप ने काट खाया या किसी ने
तलवार से सिर काट दिया; जिससे वह मर गया तो यह
समझना चाहिये कि उसकी बाकी बची हुई चालीस बरस
की आयु की उदीर्णा होगई, ऐसे ही अन्य भी सभी कर्मों

को उदोर्णा निमित्त कारणों के मिलने से होती रहती है।

अकाल मृत्यु के इस कथन से यह तो ज़ाहिर ही है कि जिस जीव की आयु ६० वर्ष की थी, उसको उसके आयु कर्म ने ही २० वर्ष की उम्र में नहीं मार डाला है, अर्थात् उसके आयु कर्म ने ही ऐसा कारण नहीं मिलाया है, जिसमें वह २० वर्ष की ही आयु में मर गया। आयुकर्म का जोर चलता तो वह तो उसको ६० वर्ष तक ज़िन्दा रखता; परन्तु निमित्त कारण के मुकाबले में आयुकर्म की कुछ न चल सकी; तब ही तो ४० वर्ष पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। जब आयु जैसे महा-प्रबल कर्म का यह हाल है तब अन्य कर्मों की तो मजाल ही क्या है, जो निमित्त कारणों का मुकाबला कर सक—उनको अपना कार्य करने से रोक सके—तब ही तो कोई ज़बरदस्त आदमी किसी को जान से मार सकता है, लाठी जूते थप्पड़ से भी पीट सकता है, उसका रहने का मकान भी छीन सकता है, धन सम्पत्ति भी लूट सकता है, उसकी खो-पुत्र को भी उठा कर ले जा सकता है, चांरी भी कर सकता है, अन्य भी अनेक कार के उपद्रव मचा सकता है, कर्मों में यह शक्ति नहीं है कि इन उपद्रवों को रोक दें। कर्मों में यह शक्ति होती तो संसार में ऐसे उपद्रव ही क्यों होने पाते? परन्तु संसार में तो बड़ा हाहाकार मचा हुआ है, जीव ही जीव को खा रहा है, सब ही जीव एक दूसरे संभयभीत होकर अपनी जान बचाते फिर रहे हैं, चूहे बिल्ली के डर सं इधर-उधर छिपते फिरते हैं, बिल्ली कुत्ते से डर कर दुबकती फिरती है, मक्खियाँ को फंसाने के लिए मकड़ी ने अलग जाल फैला रखा है, चोर डाकू अलग ताक लगा रहे हैं, दूकानदार ग्राहक को लूटने की धुन में हैं और ग्राहक, दूकानदार को होठगने की फ़िकर में हैं, धोखा, फ़रेब जाल-साज़ी का बाज़ार गरम हो रहा है, एक को एक हड्डप करना

चाह रहा है। इसी से अपने अपने कर्मों के भरोसे न रहकर सब कोई पूरी पूरी सावधानी के साथ अपने अपने जान माल की रक्षा का प्रबन्ध करता है, चाँकी पहरा लगाता है, अड़ौसी पड़ौसी और नगर निवासियों का गुद्द मिलाकर हर कोई एक दूसरे की रक्षा करने के लिये तैयार रहता है, रक्षा के बास्ते ही राज्य का प्रबन्ध किया जाता है, और बड़ा भारी कर राज्य को दिया जाता है।

कर्मों का काम निमित्त मिलाना नहीं है

उपर के शास्त्रीय वर्थन से यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि बुरे वा भर्णे किसी भी प्रकार के निमित्त मिलाने का, दुख वा सुखकी सामग्री जुटानेका काम कर्मोंका नहीं है; तब ही तो प्रतोक मनुष्य कर्मोंके भरोसे न बैठकर अपने सुखकी सामग्री जुटानेके बास्ते गतिधिन पुरुषार्थ करता है, खेती, सिपाहीगिरी, कारीगरी, दस्तकारी, दुकानदारी, मिहनत-मज़दूरी, नौकरी-चाकरी आदि सब ही प्रकारके धर्घोंमें लगा रह कर खून पसीना एक करता रहता है, यहां तक कि अपने आराम को भी भुला देना पड़ता है और तबही ज्यों त्यों करके अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनेके योग्य होता है। जो मनुष्य पुरुषार्थ नहीं करता है, कर्मोंके ही भरोसे पड़ा रहता है वह नालायक समझा जाता है और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है।

उपरके शास्त्रीय वर्थनमें साफ़ लिखा है कि कसीने नीमके कड़वे पत्ते चबाये, जिससे उसका मुंह कड़वा होगया तो उसके असातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी बुरा कर दिया अर्थात् उसको दुखका अनुभव करादिया और जब उसने मिठाई खाई, जिससे उसका मुंह मीठा हो गया, तो सातावेदनीय कर्मने उदय होकर उसका जी खुश कर दिया, उसको सुखका अनुभव करा दिया। भावार्थ—कड़वी-मीठी

बन्तु का जुटाना कर्मों का काम नहीं है, यह काम तो मनुष्य के स्वयं अपने पुरुषार्थ का वा दूसरों के द्वारा मिलाये हुए निमित्त का हा है। कर्म का काम तो एकमात्र इतना ही है कि जैसा निमित्त मिले उसके अनुसार जीव को सुखी वा दुखी करदे।

इस एक ही संसार में अनन्ते जीवों और अनन्ते पुद्गल पदार्थों का निवास है और वे सब अपना २ काम करते रहते हैं, जिससे आपस में उनकी मुठभेड़ होती रहती है—रेत व सराय के मुसाफिरों की तरह संयोग-वियोग होता ही रहता है। एक का कर्म किसी दूसरे को खींच नहीं लाता है और न खींचकर ला ही सकता है।

कर्मों का काम तो जीव में एक प्रकार का विगाड़ वा रोग पैदा करते रहना ही है। रोगी को जब रोग के कारण जाड़ा लगता है तो ठंडी हवा बुरी लगती है, परन्तु उसका राम उसको दुख देने के बास्ते ठंडी हवा नहीं चलाता है, न ठंडी हवा चलाने को रोग में सामर्थ्य ही होती है, रोग का तो सिफ़्र इतना ही काम है कि ठंडी हवा लगे तो रोगा को दुख हो, फिर जब रोगी को तेज़ बुखार चढ़ जाता है तो ठंडी हवा अच्छी और गर्म हवा बुरा लगने लगतो है, तब भी उसके रोग में यह सामर्थ्य नहीं होता है कि उसको दुख देने के बास्ते गर्म हवा चला दे। इसी प्रकार कर्म भी जीव को सुख-दुख पहुँचाने के बास्ते संसार के जीवों तथा पुद्गल पदार्थों को खींचकर उसके पास नहीं लाते हैं, उनका तो इतना ही काम है कि उसके अन्दर ऐसा भाव पैदा करदें जिससे वह किसी चीज़ के मिलने से सख्त-भेदने लगे और किसी से दुख।

कफ़ के रोगी को मिठाई खाने की बहुत ही प्रबल इच्छा होती है, मिठाई खाने में सुख मनिता है और स्वाई

से दुख । पित का रोगी खटाई से खुश होता है और मिठाई से दुखी । परन्तु रोगी के रोग का यह काम नहीं है कि वह उसको सुखी वा दुखो करने को कहीं से मिठाई या खटाई लाकर उसे खिलादे । इसी प्रकार कर्म भी जीवों में तरह तरह की विषय और कषाय पैदा करते रहते हैं; परन्तु उनका यह काम नहीं है कि जीव में ऐसी विषय या कषाय पैदा की है उसके अनुकूल या प्रतिकूल वस्तुयें भी इधर उधर से खोंच कर उसको लादें ।

क्या बिल्ली को भूख लगने पर उसके ही शुभ कर्म चूहों को बिल में सं बाहर निकाल कर फिराने लगते हैं, जिससे बिल्ली उनको आसानी से पकड़ कर खाले, या चूहे के खोटे कर्म ही बिल्ली को पकड़ कर लाते हैं, जिससे वह चूहों को मार डाले ? यह बात ठीक है तो जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को मार डालता है तो मरने वाला क्यों पकड़ा जाता है और क्यों अपराधी ठहराया जाता है ? उसको तो मरने वाले के खोटे कर्मों ने ही मरने के वास्ते मजबूर किया था, तब उस बेचारे का क्या क़सूर ? परन्तु ऐसा मानने से तो संसार का सब ही व्यवहार गड़बड़ में पड़ जाता है और राज्य का भी कोई प्रबन्ध नहीं रहता है । ऐसी हालत में हिसक, शिकारी, चोर, डाकू, लुटेरा, धोकेबाज़ ज़ालिम, जार, जालसाज़, बदमाश, आदि कोई भी अपराधी नहीं ठहरता । जो ज़ुल्म किसी पर हुआ है वह सब जब उस ही के कर्मों से हुआ—जब खुद उसी के कर्म चोर डाकू ब अन्य किसी ज़ालिम को ज़ुल्म करने के वास्ते खींचकर लाते हैं, तब ज़ुल्म करने वाले का क्या क़सूर ? वह क्यों पकड़ा जावे और क्यों सज़ा पावे ?

इसी प्रकार यह बात किसी तरह भी नहीं मानी जा सकती है कि भला बुरा जो कुछ भी होता है वह सब अपने

ही कर्मों से होता है, अपने ही कर्म सब प्रकार के निमित्त कारणों को जुटाते हैं। ऐसा हरगिज़ नहीं है और न ऐसा माना ही जा सकता है, कर्म जिसके किये हुवे हों उनका असर उस ही पर हो सकता है, न कि दूसरों पर, कर्म करने वाले पर उसके कर्म चाहे जो ज़ोर चलावें, चाहें जिस तरह नचावें पर दूसरों पर तो वह कुछ ज़ोर नहीं कर सकते हैं, दूसरों से तो उलटा सीधा वह कुछ कार्य नहीं कर सकते हैं, कोई पैदा होता है तो अपने कर्मों से, मरता है तो अपने कर्मों से, दूसरों के शुभकर्म न किसी को खींच लाकर उसके यहाँ पैदा करा सकते हैं और न दूसरों के अशुभ कर्म किसी को मारकर उसमें उसका विशेष ही करा सकते हैं। संयोग-वियोग तो सराय के मुसाफिरों के मेल के समान एक ही संसार में रहने के कारण आप से आप ही होता रहता और यह ही संयोग वियोग अच्छा बुरा निमित्त बन जाता है। अच्छे अच्छे निमित्तों के मिलने से जीव का उद्धार हो जाता है, जैसे कि सदगुरुओं के उपदेश से व सत्त्वाश्रों के पढ़ने से जीव का अनादि कालीन मिथ्यात्व छूटकर सम्यक् श्रद्धान की प्राप्ति हो जाती है; बीतराग भगवान् का बीतराग मुद्रा को देखकर, बीतराग भगवान् के गुणों का याद करने से, गुणगानरूप स्तुति करने से और बीतरागता का उपदेश सुनने से सम्यक् चारित्र धारण करने का उत्साह पैदा होता है, जिससे सत्पथ पर लगकर जीव अपना कल्याण-कर लेता है-सदा के लिये दुखों से छूट जाता है। खोटे निमित्तों के मिलने से जीव विषय-कषायों में फंसकर अपना सत्यानाश कर लेता है, कर्मों की कड़ी ज़ंजीरों में बन्धकर नरक और तिर्यञ्चगति के दुख उठाता है।

अच्छे निमित्तों को मिलाना और खोटे निमित्तों से बचना ही पुरुषाध है

आर्णादि कालसे ही विषय-कथाओं में फैसा हुआ यह जीव विषय-कथाओं का अम्भासी हो रहा है, इसही कारण विषय-कथाओं का भड़काने वाले निमित्तोंका असर उसपर बहुत जल्द होता है, विषय-कथाध की बातोंके ग्रहण करनेके लिये वह हर बच्चे तैयार रहता है। इसके विपरीत विषय-कथाओंको रोकने, दबाने, क़ाबूमें रखने अथवा सर्वथा छोड़देने की बात उसका विलकुल ही अनोग्यी मातृम होती है और इसीसे यह बहुत ही कठिनताके साथ हृदयमें बैठती है। ऐसी हालतमें बड़ी सावधानी के साथ खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी, उनको अपने पास तक भी न आने देनेकी और पूरी कोशिशके साथ उत्तम उत्तम निमित्तोंको मिलाते रहनेकी बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है। खोटे निमित्त जीवके उससे भी आर्धिक शब्द है; जितने कि उसके खोटे कर्म क्योंकि ये खोटे निमित्त ही तो सोती कथाओंको जगा कर जीवसे महा-खोटे कर्म कराते हैं और उसका सत्यानाश कर डालते हैं। इसही कारण शास्त्रोंमें महामुनियों तकको भी खोटे निमित्तोंसे बचते रहनेकी भारी ताकीद की गई है, जिसके कुछ नमूने इस प्रकार हैं।

भगवती आराधनासार के नमूने--

गाथा १८९—एकान्तमें माता, पुत्री, बहनको देखकर भी काम भड़क उठता है। गाथा १२०९—जैसे कोई समुद्रमें धुसे और भीगे नहीं तो बड़ा आश्चर्य है, ऐसे ही यदि कोई विषयोंके स्थानमें रहे और लिप्त न हो तो आश्चर्य ही है। गाथा ३३५—हे मुनि ! अग्रि समान और विष समान जो आर्यिकाओं का संग है उसको त्याग। गाथा ३३८—यदि अपनी बुद्धि स्थिर भी हो, तो भी आर्यिकाकी संगति से इस प्रकार चित्त पिघल जाता है जैसे अग्रिसे धी। गाथा १०८९—जैसे किसी को शराब पीता देखकर वा शराब को बातें सुनकर शराबी,

को शराब पीने की भड़क उत्पन्न हो जाती है, उसही प्रकार मोही पुरुष विषयोंको देखकर वा उनकी बात मुनकर विषयों की अभिलाषा करने लगता है।

मूलाचार के नमूने

गाथा १५४—संगतिसे ही सम्यक्त्व आदि की शुद्धि बढ़ती है और संगतिसे ही नष्ट होती है, जैसे कि कमलकी संगतिसे पानी सुगंधित हो जाता है, और अग्निकी संगतिसे गरम। गाथा १९०—काठ की बनी हुई छींसे भी डरना चाहिये, क्योंकि निमित्त कारण के मिलने से चित्त चलायमान होता है।

निमित्त कारण के मिलने से कर्म किस तरह भड़क उठते हैं इसका उल्लेख गोम्मट्सार में संज्ञाओं के वर्णन में इस प्रकार मिलता है।

गाथा १३३—जिसके निमित्त से भारी दुःख प्राप्त हो ऐसी वाच्छा को संज्ञा कहते हैं। आहार, भव, मैथुन और परिग्रह यह चार संज्ञायें हैं।

गाथा १३४—आहार के देखने वा याद करने से पेट भरा हुआ न होने पर असातावेदनीय कर्म की उदय उदीरणा होकर आहार की इच्छा पैदा होती है।

गाथा १३५—किसी भयंकर पदार्थ के देखने या याद करने से शक्ति के कम होने पर भयकर्म की उदय उदीरणा होकर भय उत्पन्न होता है।

गाथा १३६ स्वादिष्ट, गरिष्ठ, रसयुक्त भोजन करने से, कुशाल सेवन करने वा याद करने से वेद कर्मकी उदय उदीरणा होकर काम-भोगकी इच्छा होती है।

गाथा १३७—पदार्थोंके देखने वा याद करनेसे लोभ कर्मकी उदय-उदीरणा होकर परिग्रहकी इच्छा होती है।

निमित्त मिलने पर ही कर्म फल देते हैं

गोमट्सार के इस कथन का सार यही है कि निमित्त कारणों के मिलने से कर्म उदय में आ जाते हैं, कषाय भड़काने का अपना कार्य करने लग जाते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझा देने के लिये हम फिर जलते हुए कोयलों से भरी हुई अंगोठी का दृष्टान्त देते हैं, जिस तरह अंगोठी में भरे हुए कोयले जब तक अच्छी तरह आग नहीं पकड़ लेते हैं तब तक वह अंगोठी पर रखी हुई चोज़ को पकाना शुरू नहीं करते हैं, उसी तरह नवीन कर्म भी जब तक पुराने कर्मों से घुलमिल नहीं जाते हैं तबतक वे भी फल देना शुरू नहीं करते हैं, घुलने मिलने में जो समय लगता है उसको आवाधा काल कहते हैं। इसके बाद क्षण द्वारा मैं जिस तरह कोयलों का कुछ कुछ भाग जल-जल कर राख होता रहता है उसी तरह कर्मों का भी एक-एक भाग क्षण क्षण में भड़ता रहता है, इसही को कर्मों की निर्जरा होते रहना कहते हैं।

अंगोठी पर कोई चीज़ पकाने को रखी हो, या न रखी हो तो भी अंगोठी के कोयलों का थोड़ा थोड़ा हिस्सा जल जलखर राख ज़रूर होता रहेगा। इस ही प्रकार कर्मों को भी अपना भला बुरा फल देने के बास्ते कोई निमित्त मिले या न मिले तो भी क्षण क्षण में उनका एक एक हिस्सा ज़रूर भड़ता रहेगा। फल देने योग्य कोई निमित्त नहीं मिलेगा तो बिना फल दिये ही अर्थात् बिना उदय में आये ही उस हिस्से की निर्जरा होती रहेगी। जिस कर्म की जो स्थिति बंधी होगी अर्थात् जितने काल तक किसी कर्म के कायम रहने की मर्यादा होगी उतने काल तक बराबर उस कर्म के एक एक हिस्से की निर्जरा क्षण क्षण में ज़रूर होती रहेगी।

परन्तु जिस प्रकार अंगीठी में मिट्टी का तेल पड़ जाने से वा तेज़ हवा के लगने से अंगीठी के कोयले एकदम ही भबक उठते हैं, जिससे कोयलों का बहुत सा हिस्सा एकदम जलकर राख हो जाता है, उसी प्रकार किसी भारी निमित्त कारण के मिलने पर कर्मों का भी बहुत बड़ा हिस्सा एकदम भड़क उठता है, कर्मों का जो हिस्सा बहुत देर में उदय में आना था, वह भी उसी दम उदय में आ जाता है। इस ही को उर्दारणा कहते हैं।

कर्मों का कोई हिस्सा बिना फल दिए भी कैसे भड़ता रहता है, इसको समझने के लिये यह जानना चाहिए कि, साता और असाता अर्थात् सुख देने वाला और दुख देने वाला ये दोनों कर्म एक साथ फल नहीं दे सकते हैं। जिस समय साता का उदय होगा उस समय असाता कर्म बेकार रहेगा और जिस समय असाता का उदय होगा उस समय साता कर्म बेकार रहेगा। परन्तु कर्मों का एक एक हिस्सा तो क्षण क्षण में ज़रूर ही भड़ता रहता है, इस कारण सुख का निमित्त मिलने पर जिस समय साता कर्म फल दे रहा होगा उस समय असाता कर्म बिना फल दिये ही भड़ता रहेगा और जब दुख का निमित्त कारण मिलने पर असाता कर्म फल दे रहा होगा उस समय साता कर्म बिना फल दिए ही भड़ता रहेगा। दोनों कर्म जब एक साथ काम नहीं कर सकते हैं तब एक कर्म को तो ज़रूर ही बेकार रहकर भड़ना पड़ेगा। इस ही तरह रति और अरति अर्थात् प्यार और तिरस्कार हास्य और शोक अर्थात् खुशी और रंज दोनों एक साथ फल नहीं दे सकते हैं—एक समय में एक ही कर्म फल देगा और दूसरे को बिना फल दिये ही भड़ना पड़ेगा। निदा कर्म को इखिये कायदे के बमूजिब उसका भी एक एक हिस्सा क्षण क्षण में भड़ता रहता है, परन्तु जब तक

हम सोते हैं तब तक तो वेशक निद्रा कर्म अपना फल देकर ही भड़ता है, लेकिन जितने समय तक हम जागते हैं, उतने समय तक तो निद्रा कर्म को वेकार ही भड़ता रहना पड़ता है। इस ही प्रकार अन्य भी अनेक दृष्टिंत दिए जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय कर्म को अपना फल देने का निमित्त मिलता है वह कर्म तो उस समय फल देकर ही खिरता है बाकी जिन कर्मों को निमित्त नहीं मिलता है वे सब बिना फल दिये ही खिरते रहते हैं।

भगवती आराधनासार को संस्कृत टीका में श्री अपराजितसूरि ने गाथा १७५४ के नीचे स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि 'कर्म उपादान हैं जिनको अपना फल देने के वास्ते द्रव्य क्षेत्र आदि निमित्त कारणों की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार आमका बीज मिट्टी पानी और हवा आदि का निमित्त पाकर ही वृक्ष बनता है और फल देता है, बिना निमित्त मिले हमारे बक्स में रखकर हुआ वैसे ही बोदा होकर निकला हो जाता है। इस ही प्रकार कर्म भी बिना निमित्त मिले कुछ भी फल नहीं दे सकते हैं, यही व्यर्थ ही भड़ जाते हैं। इस ही प्रकार गाथा १२२६ में नीचे लिखा है कि जब द्रव्य क्षेत्र, काल आदि मिलते हैं तब ही कर्म अपना फल आत्मा को देते हैं।' ऐसा ही गाथा १७४० के नीचे लिखा है। ऐसा ही मूलाराधना टीका में गाथा १७११ के नीचे लिखा है कि द्रव्य क्षेत्र आदि के आश्रय से कर्म का योग्यकाल में आत्मा को फल मिलना कर्म वा उदय होना कहलाता है।

वास्तव में निमित्त कारण ही बलवान है, इसी से महामुनि गृहस्थाश्रम को छोड़ आवादी से दूर जंगल में चले जाते हैं। गृहस्थियों की आवादी में स्त्री पुरुषों के समूह में रागद्वेष और विषय कषाय का ही बाज़ार गरम

रहता है, हर तरफ़ उन्हीं का खेल देखने में आता है और उन्हीं को चर्चा रहती है। ऐसे लोगों के बीच में रह कर परिणामों का शुद्ध रहना—किंचित मात्र भी विचलित न होना—एक प्रकार असम्भव ही है, इसी कारण आत्म-कल्याण के इच्छुक महामुनि विषय क्षाय उत्पन्न करने वाले निमित्त कारणों से बचने के वास्ते आबादी न दूर चले जाते हैं। उनके चले जाने पर आबादी उजड़ नहीं जाता, किन्तु वैसी ही बनी रहती है जैसा कि पहले थी। इससे साफ़ सिद्ध है कि यह आबादी उनके कर्मों को बनाई हुई नहीं थी, किन्तु उनके वास्ते निमित्त कारण ज़कर थी, तब हा वे उसको छोड़ सके। उनके कर्मों की बनाई हुई होती तो उनके साथ जाती; क्योंकि जिन कर्मों ने उनके वास्ते आबादी का सामान बनाया हो, वे कर्म तो अभी उनके नाश नहीं हुप हैं, ज्यों के त्यों मौजूद हैं।

इस ही प्रकार बस्ती छोड़ कर जिस बन में जाकर वे रहते हैं, वहां भी शेर, भेड़िया आदिक पशु और डांस मच्छर आदि कीड़े-मकौड़े सब पहले से ही बास करते हैं और इन मुनियों के दूसरे बन में चले जाने पर भी उसी तरह बास करते रहेंगे। बन से आये हुये इन मुनियों को परिषह देने के वास्ते उनके कर्मों ने इनको पैदा नहीं कर दिया है। हां ! मुनियों के यहां आने पर उनको परिषह पहुँचाने के निमित्त कारण वे ज़कर बन गये हैं। दिन को कड़ी धूप का पड़ना, रात को ठंडी हवा का चलना, बारिश का बरसना, बरफ़ का पड़ना आदि भी जो कुछ अब हो रहा है वही इन मुनियों के आने से पहले भी होता था और जब ये मुनि दूसरे बन को चले जायेंगे तब भी होता रहेगा। इससे स्पष्ट सिद्ध हैं परिषह का यह सब सामान भी, मुनियों के कर्मों ने नहीं बनाया है किन्तु उनके यहां आने पर उनके

वास्ते निमित्त कारण ज़रूर होगया है । जो सच्चे मुनि होते हैं वे इन सब परिषहों को समझाव के साथ सहन करते हैं किंचित् मात्र भी दुख अपने मन में नहीं लाते हैं, न अपने ध्यान से ही विचलित होते हैं । यदि पापो मनुष्य भी उनको दुख देते हैं, अपमान करते हैं वा अन्य प्रकार पीड़ा पहुँचाते हैं तो भी वे कूछु ख्याल नहीं करते हैं, क्रोध और मान आदि कर्मों को किंचित्मात्र भी उभरने नहीं देते हैं, अपने महान पुरुषार्थ से उनको दबाये ही रखते हैं, दबाये ही नहीं, किन्तु सभी प्रकार की कषायों को, सारे ही राग-द्वेष को अथवा सारे ही मोहनीय कर्म को जड़-मूल से नाश करने के ही यत्न में लगे रहते हैं । इस ही कारण वे धन्य हैं और पूजने योग्य हैं ।

खोटे निमित्तों से बचे रहने के वास्ते मुनि विषय कषायों से भरी हुई बस्ती को छोड़कर जंगल में हो नहीं चले जाते हैं वृत्तिक मुनियों के संघ में रहते हैं, जहां ज्ञान वैराग्य के सिवाय अन्य कोई बात ही नहीं होती है । जहां आचार्य भहाराज उनकी पूरी निगरानी रख कर उन्हें विचलित होने से बचाते रहते हैं ।

गृहस्थियों का महान पुरुषार्थ

परन्तु गृहस्थियों का मामला बड़ा टेढ़ा है, उनका काम विषय-कषायों से एकदम मुंह मोड़ना नहीं, उनको विलकुल ही दबा देना वा छोड़ वैठना नहीं, किन्तु उनको अपने आधीन चलाने का ही होता है । उनका यह काम काले नाग खिलाने के समान है, इसी से बहुत ही कठिन और बहुत ही नाजुक है । मुनि तो विषय कषायों को ज़हरीले सांप मान कर उनसे दूर भागते हैं, दूर भागकर उनको पास तक भी नहीं आने देते हैं, परन्तु गृहस्थी स्वयं विषय कपायों को पालते हैं, अर्थात् विषय भोग भी करते हैं और क्रोध-मान-माया-लाभ आदि

सभी प्रकार की कषायें भी करते हैं। सच पूछिये तो यह कषाय ही तो गृहस्थी के हथियार होते हैं। जिनके सहारे वे अपना गृहस्थ चलाते हैं, अपने गृहस्थ के योग्य सब प्रकार की सामग्री जुटाते हैं और जुटी हुई सामग्री की रक्षा करते हैं। परन्तु ये विषय कषाय काले नाग के समान अत्यन्त ज़हरीली और केहरिसिंह की तरह महा भयानक तथा ख़ून की प्यासी होती हैं, जिनको वश में रखना और अपने अनुसार चलाना कोई आसान बात नहीं है। इसके लिये बड़ी होशियारी, बड़ी मारी हिम्मत, बड़ा दिलगुर्दा और बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। इस ही कारण ये काम वे ही कर सकते हैं जो महान् साहसी और पूर्ण पुरुषार्थी होते हैं। ज़रा चूके और मारे गये, ज़रा भी किसी ने असावधानी की और ज़हरीले सांपों ने उसको आ दबाओचा; फिर भी विषय-कषायों का ज़हर चढ़कर वह ऐसा बेहोश वा उन्मत्त हो जाता है कि अपने भले बुरे की कुछ भी सुधि नहीं रहती, फिर तो विषय कषायों में फँसकर वह आप ही अपनी ऐसी दुर्गति बना लेता है, होली का भड़वा बनकर अपने ही हाथों ऐसा ज़लील और ख़बार होता है, ऐसे २ महान् दुख भोगकर मरता है कि जिनका वग़ान नहीं किया जा सकता है और भग्कर भी सीधा नग्क में ही जाकर दम लेता है। इस कारण इस लेख में पुरुषार्थ पर इतना ज़ोर दिया गया है कि जिनके भरोसे गृहस्थी लोग कमों को निर्बल मानकर उनके उदय में पैदा हुई विषय कषायों की भड़क को क़ाबू कर अपने अनुकूल चलाने का साहम कर सकें, गृहस्थ-जीवन को उत्तमता से चलाकर आगे को भी गुम्भगति पावें—कमों के उदय से डरकर, हाथ पैर फुलाकर अपने हिम्मत, साहस और पुरुषार्थ को न छोड़ बैठें, डरे सो मरे यही बात हर वक्त ध्यान में रखें।

अगर किसी मुसाफ़िर को किसी बहुत ही दंगई घोड़े पर सवार होकर सफ़र करना पड़ जाय और उसके मन में यह बैठ जाय कि इस घोड़े पर मेरा कोई वश नहीं चल सकता है, ऐसा विचार कर वह घोड़े की बाग ढीली छोड़ दे, तो आप ही समझ सकते हैं कि फिर उस

मुसाफिर की ख्वैर कहां ? वह वे-लगाम घोड़ा तो उल्टा सीधा भागकर मुसाफिर की हड्डी पसली तोड़कर ही दम लेगा । यही हाल गृहस्थी का है, जिसको महा उद्धत विषय-कपायों को भोगते हुए भी अपना गृहस्थ-जीवन व्यतीत करना होता है । वह भी अगर यह मानले कि जो कुछ होगा वह मेरे कर्मों का ही किया होगा, मेरे किये कुछ न हो सकेगा और ऐसा विचारकर वह अपने विषय-कपायों की बागडोर को बिल्कुल ही ढीली छोड़कर उनको उनके अनुसार ही चलने दे तो उसके तबाह होने में क्या किसी प्रकार का शक या शुबाह हो सकता है ? गृहस्थी तो कुशल से तब ही रह सकती है जब अपने पुरुषार्थ पर पूरा भरोसा करके विषय कपायों की बागडोर को सावधानी के साथ थामकर उनको अपने अनुकूल ही चलाता रहे । यही उसका सद्गृहस्थीपन है, नहीं तो वह नीचातिनीच मनुष्य ही नहीं, किन्तु भयंकर राक्षस तथा हिंसक पशु बनकर अथवा विष्ट के कीड़े के समान गन्दगी में ही पड़ा रहकर अपना जन्म पूरा करेगा और मरकर नरक ही जायेगा । कर्मों को बलवान मानकर उनके आधीन हो जाने का यही तो एकमात्र कुफल है ।

असल में पुरुषार्थ से ही मनुष्य का जीवन है और इसी से उसका मनुष्यत्व है । गृहस्थी का मुख्यकार्य कर्मों से उत्पन्न हुए महा उद्धत विषय-कपायों को पुरुषार्थ के बल से अपने रूप चलाने का ही तो है, और इस कार्य के लिए उसमें सामर्थ्य भी है । अपनी सामर्थ्य के बल पर वह तो इससे भी अधिक ऐसा ऐसा अद्भुत और चमत्कारा पुरुषार्थ कर दिखा रहा है कि स्वर्गों के देवों की बुद्धि भी जिसको देखकर अचम्भा करने लग जाती है । देखो यह पाँच फ़िट का छोटा सा मनुष्य ही तो आग, पानी, हवा, विजली आदि सृष्टि के भयंकर पदार्थों को वश करके उससे अपनी इच्छानुसार सर्वप्रकार की सेवायें लेने लग गया है, आग, पानी से भाप बनाकर उससे आटा पिसवाता है, लकड़ी चिरवाता है, पत्थर फुड़वाता है, हज़ारों मनुष्य और लाखों मन बोझ लादकर रेलगाड़ी खिचवाता है — खिचवाता ही नहीं, हवा के समान तेज़ी से भगाता है । क्या कोई भयंकर से भयंकर राक्षस ऐसा

बोर सेवा मन्दिर
पुस्तकालय

है कि जो पुरुषार्थ करते हैं वे मालिक बनते हैं और जो पुरुषार्थ होकर अपने कर्मों के ही भरोसे बैठे रहते हैं वे गुलाम बन जाते हैं पशुओं के समान समझे जाते हैं ।

एक बात और भी कह देने की है और वह यह कि मनुष्यों की वस्ती में चार, ढाकु, ज़ालिम, हत्यारे, राक्षस लोभी, मानी विप्रयी सब ही प्रकार के मनुष्य होते हैं, मांस शराब व्यभिचार आदिक सभी प्रकार के कुछ्यसनों की दुकानें लगी रहती हैं, और चारों तरफ विप्रय कपायों में फँसने के ही प्रलोभन नज़र आते हैं । मुनि महाराज तो ऐसे भयंकर संयोग में अपने परिणामों को संभाले रखना अपनी सामर्थ्य से बाहर समझ वस्ती को छोड़ बन को चले जाते हैं, परन्तु सद्गृहस्थ बेचारा कहा चला जाय ? उसको तो इन सब प्रकार के दुष्ट मनुष्यों और खोटे प्रलोभनों में ही रहना होता है । इन ही के बीच में वह इस प्रकार रहता है जैसे पानों में कमल । इस कारण सद्गृहस्थ का पुरुषार्थ मुनियों के पुरुषार्थ से भी कही अधिक प्रशंसनीय और बलवान् है, जिससे पुरुषार्थ की महान् सामर्थ्य का पूरा पूरा अन्दाज़ा हो जाता है । धन्य है वे सद्गृहस्थ जो इस पुरुषार्थ का सहारा लेकर कर्मों का भी मुक्कावला करते हैं और निमित्त कारणों का भी अपने ऊपर क़ाबू नहीं चलने देते हैं, कायर और अकर्मण्य बनकर इस प्रकार नहीं लुढ़कते फिरते हैं, जैसे पत्थर वा लकड़ी के टुकड़े नदी के भारी बहाव में बहते और लुढ़कते फिरा करते हैं ।

हमारी भी यही भावना है कि हम लकड़ी पत्थर की तरह निर्जीव न बनकर पुरुषार्थी बनें और अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर दिखावें ।

“बहुत रुलो संसार में, वश प्रमाद के हां
अब इन तज उद्यम करी, जातै सब सुख होय
“भाग्य भरोसे जे रहैं, ते पाछे पछतांय ।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हंसाय ॥”



श्री महावीराय नमः

ॐ

भजन-पीयूष

प्रथम पुस्तक



रचयिता व प्रकाशकः—

कपूरचन्द वरैया वी० ए०

प्रथम संस्करण
१०००

}

विक्रमी
मंवत्
२००६

{

मूल्य
४ रुप्य



वोर सेवा मन्दिर दिल्ली



क्रम संख्या

काल नं.

ग्रन्थ

[प] यह मेरी दूसरी
अत्यन्त हर्ष का
दृमको मैं अत्यन्त
कोई ऐसा सुयोग
ना चाहुर्मास जब
का निश्चय कर
हैं।

है जिसमें अन्त
का एक पद श्रीयुत लाला रतन लाल जी मादोपुरिया र्हेस देहली
की धर्म पत्नी का है। इन भजनों को मैंने विद्यार्थी जीवन में
समय समय पर निर्माण किया है। सच पूछा जाय तो मैं यह
रचना अपनी विद्यार्थी जीवन की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए
ही प्रकाशित करवा रहा हूँ। एक विद्यार्थी से भूलों का हो जाना
स्वाभाविक है। अतः पाठकों से क्षमा याचना है। इस रचना
से समाज का किञ्चित भी लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रम को
सफल समझूँगा।

एक विद्यार्थी
कपूरचन्द वरैया वी. ए.

३० नमः सिद्धेभ्यः

दोहा—याति कर्म रिपु नाश करि पायो केवल ज्ञान ।
नमूँ सकल परमात्मा शिव पुर वास करान ॥

भजन नं० १

देव तो जिनेन्द्र देव अवर नाँहि कोई ।
अष्टादश दोष विगत सकल निकल दोई ।
वीतराग ज्ञान-धन, लोक शिपर चूडामन ।
तारन-तरन हरन पीर कहै बोई ।
तन नगन बन बसन, मगन स्वरूपाचरन ।
मदन दहन चाह चह न वहै गुरु होई ।
कही जहां दया करन, वचन सबन सुख करन ।
निखिल भरम दूर करन सही धरम सोई ।
तीन रतन जग में सार, शिवस्वरूप सुखकार ।
नमैं ‘कपूर’ बार बार, तारे अब मोई ।

भजन नं० २

धनि-धनि समुद्र विजय चन्दन को ,
 बने वर त्रिभुवन मन मोहन को ।
 रथाम वरन तन राजिव-लोचन ,
 भाल तिलक सुरभित चन्दन को ।
 अतुल रूप लखि लाजै रवि शशि ,
 धाए सुर नर छवि निरपन को ।
 छण्णन कोटि जदों संग लीने ,
 हरि-हलधर आदिक बहु जन को ।
 कंचन रथ आरूढ़ भए प्रभु ,
 चले राजुलजी के व्याहन को ।
 पथ में चले जात सहसा इक ,
 करुणा पुकार गई श्रवणन को ।
 ठहर सारथी बढ़ न नेकु अब ,
 निरखि लेन दै इन पशुअन को ।
 उर से करुणां-श्रोत बहो तब ,
 खिरक खुलाय दियो जीवन को ।
 रथ तोरण से मोड़ लियो भट्ट ,

(३)

विरति जगत से होगई मन को ।
ओड़ि बिलखती सती राजमति ,
मातु-पितन अरु नर नारिन को ।
जाय चढ़े गिरनार शिषर पर ,
वरन हेतु इक मुक्ति-समन को ।
घातिया घाति उपायो केवल ,
लोकङ्गलोक के अवलोकन को ।
दिव्य निरक्षर धुनि प्रगटी जहाँ ,
भवदधि पार करन भविजन को ।
निज तिथि अलप जानि ध्यानासन ,
हुए अघाति करम नाशन को ।
अजर अमर अक्षय अनंत हैं वै ,
'कपूर'नमत तिन पद युगलन को ।

—०—

(४)

भजन नं० ३

नमूँ नमूँ पार्श्वनाथ जिन चंद ॥ टेक ॥
 नगर बनारसि बामा जननी अश्वसेन नृप नंद ।
 नाग जुगल पल माँहि उबारे ऐसे आनंद कंद ।
 शिव श्री रञ्जन, पंचानन सम कमठ जु मान गयंद ।
 द्वै कर जोर 'कपूर' बीनबै मैटो भव दुख द्वन्द ।

—:०:—

भजन नं० ४

श्री महावीर की वीतराग छवि समवसरन सोहै ।
 कंचन वरन सप्त त्वंग तन सुर गण मन मौहै ।
 माता त्रिशला सिद्धारथ पितु कुन्डलपुर जन्म्यो है ।
 सहस अठोत्तर कलशन सौं पांडुकवन न्हवन हुओ है ।
 आयु बहत्तर पाय तीस लौं जती विरत पालो है ।
 शेष वियालीस वरष जान तप करन हियो उमगो है ।
 प्रथमऽहार पुर कूल कूल नृप निरन्तराय दियो है ।
 द्वादश वरष हरष सौ दुद्धर तपश्चरण आचरो है ।
 ग्राम जृमिभका ऋजुकूला सर तट ध्यानारूढो है ।
 केवल ज्ञान उपाय तत्क्षण द्वादश सदस लहो है ।

(५)

छासठि वासर धिरी न वाणी शक्रावधि जानो है ।
गौतम विप्र समीप जाय इक श्लोक अर्थ पूछौ है ।
जान्यो अर्थ नहीं जबही प्रभू निकट स्वयं आयो है ।
गल्यो मान दर्शन सौं तबही मन मयूर नाचो है ।
सप्त-भंगी वाणी प्रकटी भविजन मन आनंदो है ।
धनिधनि सन्मति वर्धमान अतिवीर वीर तो है ।
पावापुर बन पडगासन शिव कामिन तकि जो है ।
कर्पूर कहै त्रैलोक्यनाथ अब तुम सम अरु को है ॥

—:o:—

भजन नं० ५

जिनवाणी बंदो मन बच
काय सम्हारिकै ॥टेका॥
तीर्थकर मुख से प्रकट,
भविजन मन सुखदाय ।
गणधर गृथे द्वादशांग में,
लोकालोक लखाय ॥१॥
सप्त तत्व षट् द्रव्य जिहँ,

(६)

नय निषेप प्रमाण ।

स्यात् अस्ति नास्ति अवक्षव,
सप्त भंग जुत जान ॥२॥

मोह महा-तम पुञ्ज कुँ,
ज्ञान-भान अवदात ।

अवलोकत ही मंगल उपजै,
संचित दुरित नसात ॥३॥

शिव मण सुगम सोपान है,
मुनिगण सेव करत ।

आगदम्बे करपूर थुति करै,
तुरत होय भव अन्त ॥४॥

—:o:—

भजन नं० ६

भव तारण-तरण कुपानिधान,
महावीर तिहारी जय होवै ।

सिद्धारथ नृप राजदुलारे,
त्रिशलावति के प्राण पियारे ।

भक्त जनन के रखवारे,

(७)

महावीर तिहारी जय होवै ॥१॥
आर्यवर्त अवतार लिया है,
मिथ्या तम का नाश किया है ।
सम्यक् ज्ञान प्रकाश किया,
महावीर तिहारी जय होवै ॥२॥
हिंसा खण्डर लेकर आई,
त्राहि त्राहि रब नभ में छाई ।
धर्म धजा फिर फहरादी,
महावीर तिहारी जय होवै ॥३॥
काल बली ने आके पकड़ा,
माया ने लूटा पाप ने जकड़ा ।
सेवक का उद्धार करो,
महावीर तिहारी जय होवै ॥४॥

—:o:—

भजन नं० ७

गाओ भाई प्रभु गुण नित प्रति गाव ॥टेका॥
वीतराग विज्ञान सुधा चंप,
विषय कशाय हटाव ॥१॥

(८)

शास्त्र श्रवण साधमी संगत,
चब आराधन ध्याव ॥२॥
दान सुपात्रनि द्रव्य भावविधि,
पूज रचो धरि चाव ॥३॥
कपूर सुफल होय नर भव जासे,
मत चूकै यह दाव ॥४॥

—:o:—

भजन नं० ८

तेरो आत्मराम कूँ ध्याय बिना,
यूँ ही जीवन निष्कल जाय ।
यूँ ही जीवन निष्कल जाय,
दुवारा फिर नहीं मिलि है आय ॥१॥
बड़े भाग्य से मिली तोहि,
यह दुद्धर नर की काय ।
चिन्तामणि को पाय सयाने,
तैं खोवत काग उड़ाय ॥२॥
नदी नाव संयोग मिल्यो,

(६)

यह बहुमत विलंब लगाय ।
कुरंग नाभि कस्तूरि बसत,
त्यो परमात्म घट माय ॥२॥

सकल जगत स्वारथ को चाहत,
स्वारथ तोहि न भाय ।
स्वारथ समुभि निरन्त्रि निज गुण,
पर द्रव्य सूँ नेह हटाय ॥३॥

आप आप को शरण आप ही,
कोई कहीं न महाय ।
चेत चेत चेतन चितार चित,
चिदानन्द चिदराय ॥४॥

राग दोष तज प्रभु नाम भज,
शुद्ध त्रियोग मिलाय ।
कपूरचन्द्र पी निज अनुभव रस,
यही शिव सुगम उपाय ॥५॥

भजन नं० ६

क्या करूँ भगवान् अब तो,
 दुख सहा जाता नहीं ।
 पड़ी विपति जब आन,
 कोई पास में आता नहीं ॥१॥
 सब कुदुम्ब स्वारथ सगा है,
 अन्त में देते दगा हैं ।
 जानता जो यदि कभी,
 इनको मैं अपनाता नहीं ॥२॥
 चौकड़ी घेरे घड़ी है,
 कर्म बेड़ी पग पड़ी है ।
 चहुं और तम अज्ञान में,
 मुक्ति का पथ पाता नहीं ॥३॥
 इत का रहा न उत का रहा,
 बीच में लटका रहा ।
 इक आसरा तेरा बचा,
 कुछ और दिखलाता नहीं ॥४॥
 दिन तो विषयन में गँमाए,

(११)

जैसे आए वैसे धाए ।
 तुम्हरे गुण जो कपूर गाता,
 भव में भरमाता नहीं ॥५॥

—:—:—

भजन नं० १०

जाऊं जाऊं जी महावीरा,
 तुम पर वारना जी ॥टेक॥
 समवशरण विच आप विराजो,
 शिव वामिन वर दूलह साजो ।
 कोटि दिवाकर लाजो,
 अतुल छवि धारना जी ॥१॥
 ध्यान अनल में कर्म जलायो,
 शुद्धात्म अनुभव रस पायो ।
 मुक्ति-मार्ग प्रकटायो,
 भवि हित कारना जी ॥२॥
 सुर नर नारी पूजन आवै,
 बार बार भुवि भाल नवावै ।

(१२)

सची सचीपति गावै,
मंगल चारना जी ॥३॥
अंचन चोर आदि बहु तारे,
ब्याल भील गज स्वान उतारे ।
स्वामी मुझे भी भव दधि,
पार उतारना जी ॥४॥

—:o:—

भजन नं० ११

प्रभु याद तेरी हमसे भुलाई नहीं जाती ।
छवि शांति वीतराग की आँखों में समाती ॥१॥
अविरुद्ध शुद्ध उद्ध सुखद शुद्ध सुपद है ।
दिगम्बर स्वरूप अनूप रूप सर्वदा भाती ॥२॥
रजनी दिवस हो चाहे घंटा घड़ी या पल ।
दर्शन चिना तिहारे नहीं चैन हमें आती ॥३॥
दिल चाहता है स्वामी निरखा सदा करु मैं ।
त्रैलोक्य की सुख संपति अब नाहिं सुहाती ॥४॥
महाराज महावीर दर्शन दो दास को तुम ।
इच्छा जो फक्त दर्श की हर बार सताती ॥५॥

(१३)

भजन नं० १२

प्रभुजी सुनलो- इतनी टेर ॥टेक॥
दीन दयाल जगत की सुनते मेरी बार क्यों देर ।
पुण्यपाप पग बेढ़ी पटकी चंद कियो तन जेर ।
निरपराध हाँ पर संग करि कै भुगती विपति घनेर ॥१॥
चीतराग आनंदन लखि तुम आयो शरण दिलेर ।
दया धार चित लाज रखो अब मुझ दुष्यिया तन हेर ॥२॥
अन्य कोऊ मत जानहुँ मोक्ह अपनो ही जानो चेर ।
चंद कपूर विकट भव बन में भ्रमूँ न अब की बेर ॥३॥

—०—

भजन नं० १३

व्याहन कारन नेम कुमार,
गए नृप उग्र सेन के द्वार ॥टेक॥
छप्पन कोड़ जादबो संग,
रथ प्यादे गज वलध तुरंग ।
हरी हलधर भी जाकी लार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥१॥
कनक रथ पर आरूढ़ जिनंद,

(१४)

अतुल छवि लाजै रवि अरु चंद ।
दरश लखि लजौ मदन मद छार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥२॥

इत उत चितवत दृष्टि पसार
श्रवण सुन पशुअन की किलकार
सारथी ठहर बढ़ो न अगार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥३॥

रथ तोरण से मोड़ लियो है,
मन वैराग्य असीम भयो है ।
लखो सब कदलीवत् संसार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥४॥

तजी सती राजमती सी नारि,
चढ़े जहां भव्य शिषर गिरनार ।
हुवे वहां मुकित-वधू भरतार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥५॥

प्रभू तुम बाल ब्रह्मचारी,
चराचर वस्तु लखो सारी ।
'कपूर' भी लहे भवार्णव पार,
गए नृप उग्रसेन के द्वार ॥६॥

(१५)

भजन नं० १४

जान जिय प्रभु गुण अपरंपार ॥१॥
इन्द्र नरेन्द्र खगेन्द्र फणपति,
कोई न पावत पार ।
चार ज्ञान के धारी मुनि हूँ,
कहत बैठ गए हार ॥२॥
ज्ञानोदधि के अंजुलि जल से,
रचे सकल भडार ।
को वर्णन करि हवै विस्तावलि,
अगम अगोचर सार ॥३॥
जो हट करै वर्खान नहीं कोई,
वा सम निपट गँधार ।
स्वांति बूँद चातक कपूर उयौं,
स्वामी तू ही आधार ॥४॥

—०:—

(१६)

भजन नं० १४

मेरी सुधि लीजो जी जिनराई ॥१॥
या जग जाल में भटक्यो प्रभुजी,
दर दर ठोकर खाँई ।
तेगे शरणे ऐसो जिनजी,
भव दातक टर जाई । १॥
काल अनादि गँवायो स्वामी,
भ्रम्यो चतुर्गति माही ।
तुम विन मेरो जगतपतीजी,
आँर यहाँ कोऊ नाही ॥२॥
भवसागर में नौका म्हारी,
तुम हो मेरे सहाई ।
कपूर कहै कर जोर जिनेशी,
तुम ही पार लगाई ॥३॥

—०—

(१७)

भजन नं० १६

भगवान महावीर मोरी भौपड़ी आना,
उजड़ी हुई बस्ती को पुनः आके बसाना ॥१॥
दृष्टक में नहीं तेल नहीं तेल में बाती,
घने अन्धकार में कहीं मग भूल न जाना ॥२॥
दिलावर को दिया दिल था उयादा न सताना,
निज भक्ति के रस-कुन्ड में मस्ताना बनाना ॥३॥
क्या करूँ कहाँ जाऊँ शरण छोड़ आपकी,
भ्रमते हुए इस दास को ढुक धीर बँधाना ॥४॥
आशा अमर है जाना माना यह सबका कहना,
दिलासा दिलाके स्वामी निराशा न दिलाना ॥५॥
जर्जर पड़ी यह नवका मँझधार हूबती,
हस्तालम्ब दै कै तुरत पार लगाना ॥६॥

भजन नं० १७

वीर जिनराज भव दधि से मुझे भी पार कर देना ।
 प्रभू चरणों पड़ा तेरे शरण अपनी में ले लेना ॥१ ॥
 सती सीता को अग्नि कुण्ड से तुमने बचाया था ।
 कौरबदल के माँही त्रोपढ़ी का चीर बढ़ाया था ।
 जनम दुखिया समुभिक करिकै दया की दृष्टि कर देना । २ ।
 सुदर्शन सेठ को शूली से सिंहासन विठा दीना ।
 राय श्रीपाल को भी सिंधु से भट पार तुम कीना ।
 क्यों मेरी बार देरी है श्रीपति लाज रख लेना ॥३॥
 तुम्हारी शरण जो आया न भव वन में वो भरमाया ।
 हटाया मोह का फंदा अन्त में मुकित पढ़ पाया ।
 कहत कर्पूर कर जोरै दास की अर्ज सुन लेना ॥४॥

— — :०: — —

भजन नं० १८

महावीर को भेष दिग्म्बर भवि जन मन में ल्याते हैं ।
 वो शाँति छवि पश्चासन माँड़े आत्म ध्यान जु ध्याते हैं ॥१ ॥
 वे परब्रह्म परमात्म पूरन परमपिता कहलाते हैं ।

(१६)

जे ऐसे प्रभु को ध्यावै वे निश्चय ही मुक्ति पद पाते हैं ।२।
जनम मरण के भय से जो नर शरण प्रभु की आते हैं ।
वे अनायास विनु उद्यम के संसार सिंधु तिर जाते हैं ।३।
इन्द्र नरेन्द्र मुनेन्द्र आदि सब भगवन के गुण गाते हैं ।
कपूरचंद्र ऐसे जिनेन्द्र के चरणों शीश नमाते हैं ।४।

— : —

भजन नं० १६

वीतराग महावीर प्रभो मोय पार लगैया तुम ही तो हो ।टेका
बड़े कठिन से नर तन पाया विषयन माँही व्यर्थ गमाया ।
नहीं मैंने तेरा गुण गाया धीर बंधैया तुम ही तो हो ।१।
मातपिता सुत बन्धु संवाती सकल जगत स्वारथ का नाती ।
कोई नहीं है मेरा साथी साथ दिवैया तुम ही तो हो ।२।
कर्मों ने मुझको भरमाया तिहँ लोक सुख चैन ना पाया ।
कपूर तुम्हीं को शीश नमाया बंध छुड़ैया तुम ही तो हो ।३।

— : —

(२०)

भजन नं० २०

सद्गुरु चेतावनि देवत हैं चेतन क्यों नहि तैं चेतत हैं । टेका
थे सुर लोक में जब तुम लगी यह भावना कब से ।
मानुष तन को पावै कब अरु होवै पार उस भव से ॥१॥
या जग में आय कर मोही मोह की नींद सोता हैं ।
यह दुर्लभ पाय कर नर तन जन्म तैं व्यर्थ खोता हैं ॥२॥
कहीं भी सुख नहीं जग में यह झूँटी मोह माया है ।
अन्त पछिताएगा भाई यही श्रुत में जनाया हैं ॥३॥
इसी से जान कर सत्वर भजन कर परम आत्म का ।
बही अब पार कर देंगे जो पड़ी मँझधार में नवका ॥४॥

—:०:—

भजन नं० २१

चेतन महावीर मुख बोल, बोल बोल नित बोल ।
मन को बाँट विवेक तुला से दुष्कृत सुकृत तोल ।
पाप बढ़त लखि पुण्य घटत भट घट के पट कूँ खोल ॥१॥
मोह नींद से जग जा पंथी राह पड़ी है गोल ।
दया धरम उर गख निरन्तर जी चाहै तहाँ डोल ॥२॥

(२१)

जाके सुमरित पाप कटत हैं प्रभु नाम अनमोल ।
कहै कपूर सुनो भवि जीवो पीव सुधा रस घोल ॥३॥

—:o:—

भजन नं० २२

महावीर स्वामी हम तो दरशन करन को आए ।
तेरे द्वार पै पड़े हैं मुक्ति की सुरत लगाए ॥१॥
तुम दानवीर भागी सुनकर विरद तिहारी ।
हम भक्ति के भिक्षारी झोरी पंसारे लाए ॥२॥
अभिलाषा नहीं धन की आशा नहीं सुख तन की ।
चिन्ता है मगर मन की चरणों से हट न पाए ॥३॥
तुम बीतगग भगवन वसु कर्म-शैल चूरन ।
फिर नाथ कहो तुम विन किसकी शरण में जाए ॥४॥
कपूर पर कृपा करो अब अर्ज प्रभु उर धरो ।
यह किंकर सामने खरो कर जोर शिर नमाए ॥५॥

—:o:—

(२२)

भजन नं० २३

जाग जाग अब जाग चेतन,
प्रभु चरणन चित लाग ॥टेक॥

ज्यों रतन सिंधु में कर तै छूट्यों,
कोई जतन निकाल्यो राम ।

त्यों इस नर तन को पकर क्यों तैं,
खोवतु है चिनु काम ॥१॥

मातृ कलत्र मित्र पुत्र अरु,
काम न आवत दाम ।

काल ने गाल में दाव लियो तव,
पड़ी रहे भी चाम ॥२॥

तू जग के मग में भूल्यो भटक्यो,
गाम न कोई ठाम ।

जानि जानि मन आनि यह निहचय,
मुक्ति तिहारो धाम ॥३॥

समय को जावत वार न आवत,
बीतत जातत जाम ।

रजनी से होय दिवस दिवस से,

(२३)

फिर होवत है शाम ॥४॥
घपन बीज तो करै नीम को,
खाय कहां से आम ।
कहूर कहैं जासे भजलो भाई,
महाचीर को नाम ॥५॥

—:०:—

भजन नं० २४

एक जाचक तुमरे ढारे,
लाया है भोगी पँसारे ।
रत्नब्रय भिक्षा पाने को,
आया शरण तिहारे ॥१॥
यह कर्म लुट्रे धेरे,
मोय चतुगति माँही प्रेरे ।
इन वश दुख पाए घनेरे,
अब कृपा हाइ करो प्यारे ॥२॥
मेंडक भक्ति वश आया,
स्वर्गों में सुर पद पाया ।

(२४)

अंजन से पापी तारे,
क्यों हरो न कष्ट हमारे ॥३॥

मैना का संकट ठारा,
चमका अकलंक सितारा ।

हमरी मी लमज बचावो,
शरणागत के रखवारे ॥४॥

जग नायक सब विधि लायक,
भवि जन शिव पुर सुख दायक ।

तुम बिन मेरी को सुधि लै,
ऐ त्रिशलानन्द दुलारे ॥५॥

मैं अनादि काल से हूवा,
पै कोई सहाई न हूवा ।

कपूर हुजूर की तरणी,
भव दधि से करो किनारे ॥६॥

भजन नं० २५

आपु आपु को आप न समझ,
तातै वहु दुख तै पाया हैं ।

मरकट मृठी नहिं छाँड़त है,
हर घर घर फिर भरमाया है ॥१॥

देह गेह में आपा जाना,
पंच पार संग लिपटाया है ।

विषयन मांही ऐसे मूर्वा,
इयौं मृग मृगतुष्णा धाया है ॥२॥

लख चौरासी जोनि भटकता,
अनेक नाम तै धरवाया है ।

नरक निगोद गमन को कारण,
यही मिथ्यात् वेद गाया है ॥३॥

यह मिथ्यात् महा दुखदायक,
हलाहल अधिक तै बतलाया है ।

स्वर्गवास हैं अति खोटो जो,
एकेन्द्रियादि में ले जाया है ॥३॥

सुख चाहे तो भेदज्ञान कर,

(२६)

आतम जुदा जुदा काया है ।
जिनशासन उर दृढ़ प्रतीत कर,
कपूर यही मन में भाया है ॥५॥

— : —

भजन नं० २६

मेरी दुविधा मिट गई तुम्हरे दरश को पाके ।
सब विषय कषाय पलाय सुपर सचि लाके ॥
लो शिव पुर पायो गज आज हौं जाके ।
मम हरष बढ़यो ज्यौं विकसै कुमुद चंदा के ॥
तुम विन चित जाऊँ रहूँ भरोसे काके ।
त्रिभुवन पति मन-मन्दिर में विराजो आके ॥
कपूर प्रेम-वश विवश कहैं शिर नाके ।
प्रभु करो कृपा जो न विछुरे चरन कदै थांके ॥

— : —

(२७)

भजन नं० २७

मेरी भी वेग हरो भव पीर ।

सीता पै जब विष्टि परी भयो अग्निकुँड का नीर ।
 कौरबदल द्रोपदी पुकारी तुरत बढ़ायौ चीर ॥१॥
 सती अंजना हती दुखारी कटी कष्ट जँजीर ।
 दियो अहार भक्ति से चंदन भई कौदू की धीर ॥२॥
 श्रीपाल कोटीभट के तन व्यापो कुष्ट गंभीर ।
 नाम प्रताप हुवो मकरध्वज कंचन तुल्य शरीर ॥३॥
 अधम उधारण विदित जगत में वीतराग महावीर ।
 विरदपने की सुरत सम्हालो, करौ कपूर न ढीर ॥४॥

—:o:—

भजन नं० २८

जाग जाग तू जाग चेतन प्रभु चरणन चित लाग ॥टेक॥
 बालपना खेलत खोय यौवन छिन छिन छीजत जात ।
 अद्वृ-मृतक सम वृद्धापन लखि ज्यौं पतभड़ का पात ॥१॥
 दिन सूँ अन्तर रात होय अरु रात अनन्तर प्रात ।
 ऐसे निश दिन जात जिया नहीं कुछ भी बनती बात ॥२॥

नरतन उत्तम संगत जिनमत बार बार नहीं आते ।
दुर्लभ अवसर पाय जे चूकै हाथ मींजि पछितात ॥३॥
जन्मै मरै अकेला भुगतै सुख दुख आप ही साथ ।
तात मात किम् कथा न जावै सात धात का गात ॥४॥
कल्प अनंत सहै दुख तऊ विष विषय लात न अघात ।
पावक माँहि डारियत घृत बहु कैसे आग बुझात ॥५॥
कहन सुनन से कछु न होय क्यों बीती बात भुलात ।
निज हित हेत ‘बपूर’ कहै भज महावीर दिन रात ॥६॥

— :o: —

भजन नं० २८

चेतन ! तज माया दुखदाई भजले प्रभु नाम सुखदाई ॥टेका॥
लख चौरासी जोनि भटकि कै या काया कूँ पावै ।
चिन्तामणि हीरक सम क्यों तैं कौड़ी मोल विकावै ॥१॥
यह संसार सुपन का खेला निहच्य मन में जान ।
ज्ञान चक्रु तू खोल सदानद आतमज्योति पिछान ॥२॥
वय तेरी सब बीत चली अव चेत चेत अभिमानी ।
वाल शीश पर भटक जायगा फिर क्या आनी जानी ॥३॥

भजन नं० २६

श्रीगुरु चेतावनि देवत है,
चेतन क्यों नहिं तैं चेतत हैं ॥टेका॥

पूरव पुण्य उपाय विना कहो कैसे नर-तन मिलता ।
विनु बोए निफुराए विनु नहिं मित्रो तरुवर फलता ॥१॥
ऐसो सुकृत जनित जैन कुल तुम पायो बड़ भाग ।
तू जाग यह अवसर फेरि नहि भट प्रभु चरणन चित हाग ॥२॥
क्या धन कारण निश दिन भटकै उद्यम करै विशेषि ।
रत्नत्रय निधि तौ पै भाई ज्ञान जौहरी पेपि ॥३॥
विषय अंध मति मंद भयो क्यों निधड़क फिरै अयाने ।
तू तो निपट नदान न जानै पड़े नरक विललाने ॥४॥
अजहुँ जनम सफल तुम करिलौ सप्त तत्व पहिचानौ ।
कपूर करौ आतम हित साधन नाहि पड़े पछितानौ ॥५॥

(३०)

भजन नं० ३०

ऐसो दिन वा छिन कब पाऊँ,
जब हौं वीतराग बन जाऊँ टेका॥

सकल परिग्रह तजि धरि दश वृप,
द्वादश भावन माऊँ ।

पश्चासन दग ज्ञान चरण युत,
आप आप हरषाऊँ ॥१॥

तीन काल की परिषह सहौँ,
रिपु कर्म कलंक मिटाऊँ ।

विटप निकट इक चारू शिला पै,
निज अनुभूति रमाऊँ ॥२॥

पंच महाव्रत समिति गुप्ति त्रय,
मुक्ति हेतु चित ल्याऊँ ।

अमल अखंड अनाकुल अच्युत,
ज्ञप्ति रूप अपनाऊँ ॥३॥

क्षपक श्रेणि चढ़ि मोह खौंसि करि
सहजानंद विलसाऊँ ।

यही इक आस कपूर लगी नित,
जासे तुम गुण गाऊँ ॥४॥

भजन नं० ३१

है वीर नाम सच्चा तू ही जहान में ।
 वसु कर्म-शत्रु काट दिए ध्यान कृपाँ में ॥१॥
 सुर सुरी सुरेश आए सुविधि भक्ति-युक्त ।
 गर्भ, जन्म, तप, वेवल, शिव कल्याण में ॥२॥
 कहने को अष्ट गुण धरे विभ्राजते प्रभो ।
 परापार गुण विराजमान ज्ञान-भान में ॥३॥
 तुम नाम का आधार है चिरकाल से मुझे ।
 या दान को बसाओ अब तो मुक्ति-मकाँ में ॥४॥

—:-:—:-

भजन नं० ३२

अब की तरो मोय प्रभुजी जा विधि जैसे होय ॥टेक॥
 सुन नर शक्र करै नित सेवा तुम्हाँ सकल देवन के देवा ।
 महिमा जान प्रतीत भई उर तुम सम और न कोय ॥१॥
 अर्ज व स्व क्या तुमसे स्वाभी त्रिभुवन व्यापक अंतर्यामी ।
 मन अभिलाषा लागि रही है पूरण करदो जोय ॥२॥
 कर्मों का हुर्जा सिर पर है चैन न लैन देत पल भर है ।

मूल समेत चुका कर जड़ से देओ कर्मन को खोय ॥३॥
 अधमन मुक्ति दिलाई होगी, वेद पुराण में गई होगी ।
 सहाय करो ऐसे संकट में जब हौं जानूँ तोय ॥४॥
 शीश नमाए कपूर खड़ा है, चर्ण शण में पड़ा हुआ है ।
 पार लगायो या भटकाओ करो जो चाहे सोय ॥५॥

—:—:—

भजन नं० ३३

वर्णीजी महाराज पधारे रतन अमोलक पाया है ।
 पुरुय-उदय हम सबका आया सफल मनोरथ भाया है ।
 हुआ चतुर्मासा दिल्ली में आनन्द अनुपम छाया है ।
 दे उपदेश श्री गुरुवर ने निज पर भेद बताया है ।
 धर्म अहिंसा सत्य अनूपम, है अचौर्यमणि गुणगण भूषण ।
 ब्रह्मचर्य ब्रत धारण करिके निज-अनुभव रस पाया है ।
 लोभ कपाय जिन्होंने छोड़ी जगत-जाल से ममता तोड़ी ।
 इन्द्रिय-विषयोंको तजि करिके जिनआत्मध्यान लगाया है ।
 उन वर्णीजी के चरणों में है बन्दन शतवार हमारा ।
 तूर्ण तपस्वी योगीचर हैं मिथ्या-भाव हटाया है ।

(३३)

पूरणसागर पूर्ण विमल है पूर्ण कला जिनके घट जागी ।
दे उपदेश सकल जीवन को मोक्ष मार्ग बतलाया है ।
निजानन्दजी निजानन्द रत निजाआतम का ध्यान किया ।
चतुर्वेद का रूप बताकर हित उपदेश सुनाया है ।

चि

ग ।

आ

है ।

ब्र

३

बोर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, राजघाट जगन्नाथ मंदिर देहली में छपा ।
